पंचम अध्याय

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक संचेतना

पंचम अध्याय

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक संचेतना

पंचम अध्याय

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक संचेतना

5.1 ऐतिहासिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि

5.1.1 भुवन विक्रम

5.1.2 देवगढ़ की मुस्कान

5.1.3 गढ़कुंडार

5.1.4 मृगनयनी

5.1.5 महारानी दुर्गावती

5.1.6 विराटा की पद्मिनी

5.1.7 टूटे कोंटे

5.1.8 माधवजी सिंधिया

5.1.9 अहिल्याबाई

5.1.10 कचनार

5.1.11 मुसाहिबजू

5.1.12 झाँसी की रानी

5.1.13 रामगढ़ की रानी

5.2 संस्कृति

5.2.1 रीति रिवाज

5.2.1.1 विवाह से संबंधित रीति-रिवाज

5.2.1.2 जातिगत से संबंधित रीति-रिवाज

5.2.1.3 युद्ध और विजय से रीति-रिवाज

5.2.1.4 मृत्यु संस्कारों से संबंधित रीति-रिवाज

5.2.1.5 अन्य रीति-रिवाज

5.2.2 धर्म

5.2.2.1 देव-दर्शन

5.2.2.2 तीर्थयात्रा

5.2.2.3 अन्ध विश्वास

5.2.3 पर्व-त्यौहार

5.2.4 खान-पान

5.2.5 आमोद-प्रमोद और क्रिडाएँ

5.2.6 वेश-भूषा

5.2.7 कलाएँ

5.2.7.1 चित्रकला

5.2.7.2 मूर्तिकला

5.2.7.3 संगीत कला

5.2.7.4 नृत्य कला

5.2.7.5 स्थापत्य कला

5.2.3 स्वदेश

5.2.3.1 बुन्देलखंड के प्राकृतिक चित्रण

5.2.3.1.1 नदियों का वर्णन

5.2.3.1.2 पहाड़ियों का वर्णन

5.2.3.1.3 झील का वर्णन

5.2.3.1.4 वन वृक्ष व झाड़ी-झाखाड़ों का वर्णन

5.2.3.2 बुन्देलखंड के तीज-पर्व और त्यौहार

5.2.3.2.1 चैत्र की नवरात्र और पूजन

5.2.3.2.2 होली

5.2.3.2.3. अक्षय तृतीया

5.2.3.3 बुन्देलखंड के अन्य आचार-व्यवहार

5.2.3.3.1 मत्स्यवेध

5.2.3.4 बुन्देलखंड की भाषा

5.2.3.5 बुन्देलखंड के गीत-लोकगीत

5.2.3.6 बुन्देलखंड के लोक नृत्य

5.2.4 राष्ट्र

5.2.4.1 राष्ट्रीयता का स्वरूप

5.2.4.2 राष्ट्रीयता की परिभाषा

5.2.4.3 राष्ट्रीय भावना की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

5.2.4.3.1 जाति, धर्म और संप्रदाय के प्रति विरोध

5.2.4.3.2 सत्याग्रह आन्दोलन की अभिव्यक्ति

5.2.4.3.3 राज्य तथा राष्ट्र के प्रति किया गया त्याग

5.2.4.3.4 रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का विरोध

5.2.4.3.5 देश प्रेम की भावना

अध्याय-5

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक संचेतना

5.1 ऐतिहासिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि

5.1.1 भुवन विक्रम

भुवन विक्रम वर्माजी का उत्तरवैदिक काल से संबंधित ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें कल्पना का भी सहारा लिया गया है । उपन्यास की मूल कला अयोध्या के राजा रोमक की कहानी पर आधारित है । इस उपन्यास को लिखने की प्रेरणा वर्माजी को अपनी बालिका द्वारा पुस्तक पढ़ते हुए सुनने से मिली । इस संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा है -

"अपनी छोटी-सी बालिका को एक पुस्तक पढ़ते सुना - अयोध्या के एक राजा थे । बहुत अकाल पड़े । प्रजा दुःखी हो गई । राजा को किसी ऋषि ने बतलाया कि तुम्हारे राज्य में एक शूद्र तपस्या कर रहा है, इसलिए अकाल-पर रहे हैं उसे मार दो तो अकाल का युग समाप्त हो जावेगा । राजा ने कहा, 'मैं राज्य छोड़ने को तैयार हूँ, परंतु यह कुकर्म करने को तैयार नहीं ।' इस पर ऋषि ने कहा कि मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था ।"

इस कहानी ने अनेक सुझाव दिए और मैं उसके मूल स्त्रोत की ओर आकृष्ट हुआ ।''[1]

प्रस्तुत उपन्यास की तत्कालीन पृष्ठभूमि को समझने के लिए वर्माजी ने डॉ. नारायण वंद्योपाध्याय की 'इकनोमिक लाइफ एंड प्रोग्रेस इन एनसिएंट

इन्डिया', डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी हिंदू सिविलाइज़ेशन तथा डॉ. भगवानदास की 'शस्त्रवाद बनाम बुद्धिवाद' नामक पुस्तक का अध्ययन किया किया है और उसे अपनी लेखनी का आधार बनाया है । इन्हीं पुस्तकों के आधार पर उन्होंने अपने उपन्यास में उत्तरवैदिक कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चेतना को भी व्यक्त किया है ।

उपन्यास की मूल कथा राजा रोमक और भुवनविक्रम के चरित्र से संबद्ध है । राजा रोमक के शासन काल में अयोध्या में कई वर्षों तक अकाल पड़ते रहे । अकाल पड़ने का कारण राजा के पापों का फल समझा जाता था । इसी कारण समिति ने राजा रोमक को पद से वंचित कर दिया था और वर्षा होने पर फिर से राजगद्दी सौंप दी थी । इन्हीं राजा रोमक के पुत्र भुवनविक्रम के नाम पर यह उपन्यास लिखा गया है ।

इसके अतिरिक्त उपन्यास में तत्कालिन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों का जो कुछ भी वर्णन किया गया है वह पूर्ण रूप से इतिहास सम्मत है । विशेषकर सामाजिक वातावरण । उपन्यास में आये अयोध्या के लोगों का सामाजिक जीवन, वर्णव्यवस्था, संस्कार व्यवस्था, आश्रमव्यवस्था, शिक्षा आदि का चित्रण उत्तरवैदिक काल के समय के अनुसार किया है, उपन्यास में भुवन विक्रम का आश्रम जाना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, भिक्षा, श्रम और तप करना आदि प्रसंग सत्य है । इसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों

में आया है कि किस प्रकार शिष्य ब्रह्मचर्य का पालन करते थे । उदाहरण देखिए -

"उपनयन संस्कार के पश्चात ब्रह्मचारी नवीन वस्त्रों को धारण करता हुआ गुरू के समीप पहुँचता था । गुरू अपने आश्रम-जिसको प्रायः गुरूकुल भी कहा जाता था - में निवास करता था । यहीं पर प्रकृति के एकांत तथा शांत वातावरण में विद्यार्थी ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों का पालन करता हुआ कर्पणम वसना (मेखला तथा केश) धारण करता था । श्रम और तप ही उसके प्रमुख कार्य थे । यज्ञ के लिए सामग्री जुटाता था तथा भिक्षा मांगता था । उसे भिक्षा देना प्रत्येक गृहस्थ का पुनीत कर्तव्य था। यह भिक्षा हेय नहीं थी । गुरु ईश्वर तुल्य था । गुरुकुल में निवास करने वाले ब्रह्मचारी का शारीरिक, बौद्धिक तथा मानसिक विकास गुरु के नियंत्रण में होता था ।....." [2]

उपन्यास में भी ब्रह्मचर्य आश्रम का उल्लेख आया है जब रोमक अपने पुत्र के उद्यम से परेशान हो जाते हैं और उसे 16 वर्ष की आयु में गुरु धोम्य के आश्रम में भेजते है । उदाहरण देखिए -

"द्योम्य ने भुनव को अपने आश्रम में ले लिया । वैसे छोटी आयु के ही बालक आश्रमों में प्रवेश पाते थे, परंतु रोमक के विनय भरे अनुरोध और अपनी उदार वृत्ति के कारण धोम्य ने आनाकानी नहीं की ।"[3]

"गुरूकुल वास अथवा छात्राव्यवस्था के आरंभ और अवधि का कोई निश्चित मापदंड नहीं था छान्दोग्य के अनुसार श्वेतकेतु ने बारह वर्ष की आयु

में अध्ययन आरंभ किया तथा बारह वर्ष तक जारी रखा । इसके अलावा 32 वर्ष तथा जीवन पर्यंत तक अध्ययन करने का उल्लेख मिलता है ।''[4]

वर्णव्यवस्था के संबंध में कहें तो प्राचीन काल में सामान्य तौर पर वर्णव्यवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भागों में विभाजित किया गया था। शूद्रों की स्थिति बहुत दयनीय थी । उनका कार्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना था । उन्हें पढ़ने का अधिकार भी नहीं था वे सदैव अशिक्षित एवं अनपढ़ रहा करते थे । प्राचीन साहित्यों में इसका उल्लेख आया है ।

''समाज में शूद्र वर्ण की स्थिति निम्न थी । शूद्र पतित तथा हेय माने जाते थे । अधिकार और प्रतिष्ठा से वंचित शूद्रों की तुलना पशुओं से की गई थी ।''[5]

उपन्यास में भी कपिल का पसंग आया है जिसके साथ नीलमणि, हिमानी, हीन व्यवहार करते हैं, उसका शोषण करते हैं । वर्माजी ने कपिजल के प्रसंग को लेकर उससे तपस्या करवा कर वर्ण व्यवस्था के संबंध में आ रही जटिलता को विविध व्यक्तियों की प्रतिक्रिया के माध्यम से प्रकट किया है । और महर्षि योग्य की व्याख्या द्वारा श्रम को महत्व दिया है ।

''श्रम सबसे ऊपर है, सबका राजा है । उसका विभाजन वर्ण-कल्पना हैं । विद्याओं का आजीवन संग्रह, मनन और विवरण करने वाला ब्राह्मण, देश का रक्षा और समृद्धि का सहायक क्षत्रिय, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और उद्योगों को करने, बढ़ाने वाला वैश्य-चोर, डाकू, अधर्मी, अत्याचारी दस्यु से भी कोई शूद्र

नहीं । स्मृति और श्रृति की मेरी व्याख्या यही है और मैं इसी को चलाऊँगा । अहंकार, द्वेष, भय, परिगृह और वासनाओं में लिप्त लोग भी दस्यु और शूद्र कहलायेंगे । मानव के सबसे बड़े शत्रु अहंकार और स्वार्थ है । इनको वश में करने के लिए आश्रमों का सृजन हुआ है ।''[6]

जन्म से वर्ण का कोई संबंध नहीं है इसलिए महर्षि धेल्य स्वभाव और बृद्धि से श्रेष्ठ कविंजल को अपना शिष्य ही नहीं बनाते वरन् योग विद्या भी देते हैं । कपिंजल के उनका शिष्य बनने से इन्कार करने पर वे समाधान करते हुए कहते हैं-

''मैं शास्त्र की अनुचित या अनुपयोगी बातों को नहीं मानता । श्रृति की एक बात सदा, सबके लिए लागू है - उपर उठना और आगे बढ़ना, प्रत्येक जीव का लक्ष्य है । मैं तुमको अपना शिष्य बनाऊँगा ।''[7]

उपन्यास में अकाल का वर्णन, राजा रोमक द्वारा अश्वमेघ यज्ञ, 10-12 वर्षों के बाद वर्षा का होना, अयोध्या में फिनीशियनों का व्यापार, ब्याज पर पैसा देना, दास प्रथा का प्रचलन आदि घटनाएँ ऐतिहासिक है । उपन्यास में आये अयोध्या नगरी, धोम्य, मिथला, पंचाल, दशार्ण, खेड़ा और वैमिष्यारण्य आदि ऐतिहासिक है ।

उपन्यास में आये अरुणी, कल्पक, ममता, हिमानी, गोरी, नील, दीर्घबाहु आदि पात्र काल्पनिक है । इसके अतिरिक्त गोरी के माता-पिता, भुवन-हीमानी के विवाह का प्रसंग, हिमानी का षडयंत्र रचना, आरुणी संबंधित प्रसंग आदि

घटनाएँ काल्पनिक है परंतु कथानक का जो समय है उसके अनुकूल ही घटनाएँ एक दूसरे से संबंधित है । इन घटनाओं में कोई घटना काल में विरुद्ध नहीं है, भले ही पूर्ण रूप से काल्पनिक ही क्यों न हो । और पात्र भी काल्पनिक क्यों न हो ।

प्रस्तुत उपन्यास पढ़ने पर ज्ञात होता है कि उसमें वर्णित स्थान, घटना, सामाजिक व्याख्या, धार्मिक, आर्थिक वातावरण एवं परिस्थितियाँ आदि का जिस प्रकार चित्रण किया गया है वह युगीन साहित्य के अध्ययन का ही परिणाम मालूम होता है । इस उपन्यास में वर्माजी ने अनावश्यक रूप से कोई भी पात्र नहीं लिया गया है । इसके सभी पात्र कोई न कोई देशकाल, जीवन एवं समाज का रहस्य खोलकर कथानक आगे बढ़ाते हुए परिलक्षित होते हैं । इस उपन्यास में लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि अतीत की कल्पना सुनहरी कल्पना की वस्तु नहीं है । उसमें भी आज के वातावरण के समान व्यक्तियों का निवास था। उस समय में भी मानव सुलभ व्यापार और अपने सुख के लिए दूसरे का बहुत बढ़ा उपकार भी किया जाता था । जैसा कि आज भी होता आ रहा है ।

5.1.2 देवगढ़ की मुस्कान

'देवगढ़ की मुस्कान' वर्माजी का अंतिम ऐतिहासिक उपन्यास है । इसका प्रकाशन 1973 ई. में वर्मा जी के स्वर्गवास के बाद हुआ । प्रस्तुत उपन्यास को

शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कह सकते क्योंकि इसमें कुछ घटनाएँ काल्पनिक है।

इस उपन्यास का सम्बन्ध जिझोती (बुन्देलखंड) के राजा विजयपालदेव से है। जो 11वीं शताब्दी में 1030-40 के राजा थे । उपन्यास की सारी कथा इन्हीं के ऊपर चित्रित है । परंतु ऐतिहासिक साहित्यों में इनका उल्लेख नहीं आया है क्योंकि ये प्रचलित राजा नहीं थे। परंतु परंपरा में इनका उल्लेख मिल जाता है। इस बात की पुष्टि के लिए 'उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास' में लिखा है -

''विद्याधर के पुत्र विजयपाल के समय चन्देलों की सत्ता शिथिल और संकुचित होने लगी । यद्यपि उसका शासन लगभग बीस वर्षों का था, उसका कोई निजी अभिलेख नहीं मिलता ।''[8]

उपन्यास में विजयपाल के पिता विद्याधर देव, विद्याधर देव और महमूद गजनवी का युद्ध, कालिंजर पर महमूद गजनवी का युद्ध प्रसंग, कालिंजर के सभी सेनाओं का गजनवी द्वारा अन्त तथा विद्याधर के साथ गजनवी की संधि आदि प्रसंग ऐतिहासिक है । जिसका प्रमाण 11वीं शताब्दी के ऐतिहासिक साहित्यों में मिल जाता है ।

इस सम्बन्ध में श्रीवास्तवजी 'भारत का इतिहास' नामक पुस्तक में लिखते हैं -

''इनमें बुन्देलखंड के चन्देल राजा का नाम अग्रगण्य है । इस शक्तिशाली राजा ने (उसे कोई गण्ड कहता है और कोई विद्याधर) अपने देश और धर्म की

रक्षा के लिए कुछ प्रमुख शासकों का संघ बनाया । इस संघ के सदस्य कन्नौज के राज्यपाल से बहुत असन्तुष्ट थे क्योंकि यह बिना युद्ध किये ही अपनी राजधानी से भाग गया था । इसलिए उन्होंने राज्यपाल पर आक्रमण किया और युद्ध में उसे मार डाला । इस पर कुपित होकर महमूद ने फिर भारत पर आक्रमण क्रिया पर गजनवी राजा विद्याधर देव को पराजित नहीं कर पाया । वह फिर से 1019 में चन्देल राजा को पराजित करने के लिए बुन्देलखंड की ओर बढ़ा चन्देल राजा ने शक्तिशाली सेना लेकर उसके मार्ग को अवरूद्ध करना चाहा, किंतु किसी अज्ञात कारण से रात्रि के समय वह रणक्षेत्र से यकायक ही भाग खड़ा हुआ । इतनी विशाल सेना को देखकर महमूद का उत्साह भंग हो गया था, किंतु गण्ड के भाग जाने से उसका काम बन गया । उसने चन्देलों के सम्पूर्ण राज्य को बुरी तरह लूटा और अतुल लूट का धन लेकर 1022 ई. में गज़नी को लौट गया ।''[9]

परंतु इब्नुलू - अहतर इस मुठभेड़ का विवरण कुछ और ही प्रकार से देते हैं वे लिखते हैं -

''दोनों की मुठभेड़ किसी नदी के किनारे हुई तथा दोनों ने ही अपनी सेनाओं की संख्या बढ़ाते हुए घमासान लड़ाई की । किंतु रात्रि ने दोनों को अलग कर दिया और दूसरे दिन महमूद ने मैदान खाली देखा । उसने जंगलों और झुरमुटों में विद्याधर की सेनाओं का पीछा करते हुए बड़ी संख्या में हिन्दू सैनिकों को मारा और विद्याधर अकेले बच निकला।''[10]

उपन्यास में वर्मा जी ने गजनबी और विद्याधर की संधि की चर्चा करते हुए लिखा है -

"महमूद ने कालिंजर का घेरा डाला । महीनों डाले रहा कुछ न कर सका । तब उसने संधि की चर्चा चलाई । मैत्री स्थापित करने की बात की । अपने कालिंजर में बने लोहे के हथियार जगत् प्रसिद्ध है । उसने मित्र रूप में चाहे, उसे दिए और वह गजनी लौट गया ।"[11]

परंतु इस सम्बन्ध में मूल ऐतिहासिक साहित्यों में कुछ और ही कहा गया है । विद्याधर और महमूद की मैत्री के साथ में 'भारत का इतिहास' में श्रीवास्तवजी यह कहते हैं -

"..... कालिंजर को घेर लिया गया किंतु सरलता से उस पर अधिकार न हो सका । घेरा दीर्घकाल तक चलता रहा । महमूद गजनी लौटने का इच्छुक था इसलिए उसने चन्देल राजा से सन्धि कर ली । राजा ने कर के रूप में 300 हाथी सुल्तान को देना स्वीकार कर लिया । कहा जाता है कि उसने महमूद की प्रशंसा में एक कविता भी लिखी जिसे सुनकर सुल्तान इतना प्रसन्न हुआ कि उसने 15 किले उसे इनाम के रूप में दे दिये । इस सन्धि के उपरान्त लूट का धन लेकर महमूद गजनी को लौट गया ।"[12]

उपन्यास में गांगेयदेव की 100 रानियों का उल्लेख आया है जब महिपाल गांगेयदेव की विलासता का ब्यौरा सुनाते हैं । यह ऐतिहासिक सत्य है । इतिहास में भी इसका उल्लेख मिलता है -

"अभिलेखों से प्राप्त होता है, जहाँ यह कहा गया है कि गांगेय देव ने प्रयाग के वटवृक्ष के नीचे अपना स्थायी निवास (निवेशबन्ध) सा बना लिया था और वहीं उसने अपनी 100 गृहिणी (रानियों) के साथ मुक्ति पायी (शरीर त्याग किया ।)"[13]

उपन्यास में अधिकतर घटनाएँ जैसे नरवरगढ़ के नायक का आक्रमण, मांगेयदेव के पुत्र लक्ष्मी कर्ण के विजयपाल देव के साथ युद्ध करने की अन्दरोअन्दर तैयारी आदि घटनाएँ ऐतिहासिक सत्य है । इसके अतिरिक्त बुद्धा, उसका भाई मिट्ठू तथा उनकी बहिन तिनकी, वासन्ती वैश्या, उसकी दो पुत्री कुबेरदत्ता, नागदत्ता, धनपाल संबंधी प्रसंग काल्पिक घटनाओं पर आधारित है जो उपन्यास के कथानक को गति प्रदान करती है । अन्य गौण घटनाओं का उपन्यास में विशेष स्थान नहीं है ।

5.1.3 गढ़ कुण्डार

प्रस्तुत उपन्यास वर्माजी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है । इसका रचना काल 1927 है । इसी उपन्यास से वर्मा जी की ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा का श्री गणेश होता है । इस उपन्यास की कथा तेरहवीं शताब्दी के अंतिम और चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल से संबंधित है इस उपन्यास में वर्माजी ने तेरहवीं शताब्दी की दो जातियों बुन्देलों तथा खंगारों के मध्य ऊँच-नीच के भेद भाव, पारस्परिक युद्धों, खंगारों का पतन तथा बुन्देलों के उदय का चित्रण प्रस्तुत किया है ।

'गढ़ कुण्डार' उपन्यास में वर्माजी ने इतिहास तथा कल्पना दोनों का उपयोग किया है । इसके अतिरिक्त वर्माजी ने किंवदंतियों तथा परंपराओं का भी सहारा लिया है ।

उपन्यास में खंगारों और बुन्देलों के युद्ध में खंगारों के पतन की मूल घटना ऐतिहासिक सिद्ध है । इसका प्रमाण हमें 'बुन्देलखंड का परिचय' नामक पुस्तक में मिलता है -

''बुन्देल राज्य का उदय तेरहवीं शती के मध्य में हुआ । पहले बुन्देलों ने महौनी में राज्य किया । बुन्देल राजा सोहन पाल ने गढ़ कुंडार के खंगार राजा जुरमतसिंह को पराजित कर वहाँ अपना अधिकार कर लिया ।''[14]

उपन्यास के प्रमुख पात्र हुरमतसिंह नागदेव, सोहनपाल, धीरप्रधान, पुष्पपाल, विष्णुदत्त, सहजेन्द्र ऐतिहासिक पात्र है । इसके अतिरिक्त अग्निदत्त, दिवाकर, तारा, मानवती, अर्जुन, कुम्हार, करीम, अत्तीबेग, मुकुटमणि चौहान आदि कल्पित पात्र है ।

उपन्यास के परिचय पृष्ठ में वर्माजी ने सोहनपाल की लड़की 'हेमवती' का नाम ''राज्य के भाट के कथनानुसार 'रूपकुमारी' था ।''[15] यह बताया है ।

परंतु गोरेलाल तिवारी के अनुसार इतिहास में 'हेमवती' का नाम 'धर्मकुँवरि' है ।''[16]

सोहनपाल का सहायता माँगने के लिए 'कुंडार' आना इतिहास सम्मत है । इस विषय में वर्मा जी ने परिचय पृष्ठ में लिखा है -

"सोहनपाल के साथ उनके भाई ने न्यायोचित बरताव नहीं किया था, इसलिए उनको कुंडर-राजा से सहायता की याचना करनी पड़ी ।"[17]

वर्माजी ने इस बात का कारण बताते हुए उपन्यास के पृष्ठ नंबर 24 पर लिखा है - ".... अर्जुनपाल ने थोड़े से गाँव तो सोहनपाल को दिए हैं और शेष माहौनी की भूमि वीरपाल और दयापाल को दे दी है - जैसा बरताव इनके परदादे जगदास पंचम के साथ उनके बाप वीरभद्र ने किया वैसा ही बरताव, अर्जुनपाल ने सोहनपाल के साथ किया है, और सोहनपाल जगदास की भाँति ही दुःखी है । वह आपसे सहायता की भिक्षा के लिए आए हैं ।"[18]

इस संदर्भ में गोरेलाल तिवारी जी लिखते हैं -

"अर्जुनपाल वि. संवत् 1288 में स्वर्गवासी हुए । इनके मरने पर क्या-क्या हुआ यह तो पूर्ण रूप से नहीं मालूम होता पर ऐसा पता लगता है कि वीरपाल अपने भाई सोहनपाल को गद्दी से उतार कर स्वयं राजा हो गया । इसने सोहनपाल के भरण-पोषण के लिये कुछ जागीर दे दी पर यह बात उसे बहुत ही बुरी लगी । इससे वह जागीर छोड़ उदास हो घर से निकल गया । वह कुछ दिनों तक इधर-इधर घूमता रहा पर अन्त में गढ़ कुंडार आया । यहाँ पर खूब सिंह खंगार का वंशज हुरमतसिंह राज्य करता था । सोहनपाल ने इससे महोनी निकालने के लिये सहायता माँगी ।"[19]

इसके अतिरिक्त सोहनपाल की सहायता के लिए हुरमतसिंह का अस्वीकार करना, हुरमतसिंह का अपने पुत्र नागदत्त के लिए उनकी पुत्री के विवाह की शर्त

रखना, सोहनपाल का शर्त का अस्वीकार करना, फलस्वरूप हेमवतीहरण की कुचेष्ठा, 1288 ई. में सोहनपाल तथा अन्य बुन्देलों ने नागदत्त के साथ हेमवती के विवाह को षडयंत्र द्वारा राजा हुरमतसिंह, उसके पुत्र नागदत्त तथा अन्य खंगारों का विनाश करना, सोहनपाल का विजयी होना, सोहनपाल का गढ़ कुण्डार पर अधिकार करना, सोहनपाल के पुत्र सहजेन्द्र की राज्यप्राप्ति में करेरा के पवार सरदार पुष्पपाल का हाथ होना, पुष्पपाल के साथ हेमवती का विवाह आदि इतिहास सम्मत है ।

ऐतिहासिक पुस्तक में इसका उल्लेख आया है । 'बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास' में लिखा है -

"इसने (सोहनपाल) पहले हुरमतसिंह से सहायता माँगी थी पर उसने न दी थी, सोहनपाल ने उससे बदला लेना चाहा और अपनी सेना लेकर बेतवा के किनारे डेरा डाल दिया । यहाँ से अपने पुत्र सहजेन्द्र को, अपने पुरोहित और धीर नामक प्रधान के साथ गढ़ कुंडार के राजा हुरमतसिंह के पास दुबारा भेजा । इस समय अपने साहूकार विष्णु पाण्डे के कहने पर सहायता देना तो स्वीकार कर लिया, परंतु अपनी लड़की का विवाह राजकुमार के साथ करने का वचन लेना चाहा । इसे सुन सोहनपाल बहुत दुःखित हुआ और उसने वि.सं. 1314 में इस पर चढ़ाई कर दी । हुरमतसिंह लड़ाई में हार गया । इससे सोहनपाल ने गढ़ कुंडार पर अधिकार कर लिया ।"[20]

विष्णुदत्त पाण्डे के पुत्र अग्निदत्त एवं राजा हुरमतसिंह की पुत्री मानवती का प्रणय अग्निदत्त की बहन तारा तथा सोहनपाल के मंत्री धीर के पुत्र दिवाकर का प्रेम आदि प्रसंग काल्पनिक है । जो तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण की संगति में है ।

हरि चन्देल, इब्बत करीम, अत्तीबेग आदि पात्र के प्रसंग परंपरा अनुसार लिए गए हैं ।

बलबन का प्रस्तुत काल में दिल्ली का शासक होना, बंगाल में उसका युद्ध करने जाना, बलबन की पराजय, उसके पुत्र मोहम्मदखां की मृत्यु, उसके दूसरे पुत्र बोगरा को गद्दी ना मिलना, बलबन की मृत्यु, दिल्ली की राजगद्दी मुईजुद्दीन (मोहम्मद खां का पुत्र) को मिलना आदि घटना ऐतिहासिक सत्य है । इन सभी घटना का विवरण हमें 'दिल्ली सल्तनत' नामक ऐतिहासिक पुस्तक में मिलता है । जिसकी पुष्टी हमें निम्नलिखित संदर्भ पढ़कर हो जाती है ।

"अपना अन्त निकट समझकर उसने द्वितीय पुत्र बुगराखाँ को बुलाया और रुग्णावस्था में अपने साथ रहने को कहा । किंतु बुगराखाँ उत्तरदायित्वहीन व्यक्ति था और पिता के कठोर स्वभाव से डरता था । इसलिए वह चुपके से लखनौती को खिसक गया । तब बलबन ने मुहम्मद के पुत्र कैरबुत्तरव को अपना उत्तराधिकारी चुना जिसके उपरान्त कुछ ही दिनों के भीतर उसका देहान्त हो गया (लगभग 1287 ई. के के मध्यम में) ।"[21]

5.1.4 मृगनयनी

इस उपन्यास का संबंध 15वीं से 16 शताब्दी के आरंभिक काल तक का है। मानसिंह तोमर 1486 से 1516 ई. तक ग्वालियर का राजा रहा । मानसिंह वीर और योग्य शासक था । ऐतिहासिक लेखकों ने मानसिंह के राज्यकाल को तोमर-शासन का स्वर्णयुग कहा है । इसी काल की पृष्ठभूमि पर यह उपन्यास लिखा गया है । मानसिंह की प्रसिद्धता का उल्लेख ऐतिहासिक पुस्तकों में इस प्रकार है -

"मानसिंह तोमर का नाम इतना प्रख्यात है कि फारसी के समकालीन ग्रन्थों में भी उसे शुद्ध रूप में लिखा और पढ़ा गया है । विक्रम संवत् 1552 के एक मृतिलेख में उसका नाम 'मल्लसिंह' के रूप में दिया गया है ।"[22]

गुजरी रानी मृगनयनी के साथ मानसिंह का विवाह, मानसिंह द्वारा निर्मित ग्वालियर के भीतर गुजरी महल और मानमंदिर ऐतिहासिक सत्य है जिसका प्रमाण आज भी ग्वालियर किले के भीतर के गुजरी महल[23] और मानमंदिर[24] दे रहे हैं । उदाहरण के लिए छबि देखिए, जिसे नीचे की तरफ दर्शाया गया है ।

कहा जाता है कि "ग्वालियर में स्थित गुजरी महल भारत के प्रसिद्ध पुरातात्विक संग्रहालयों में से एक है यह इमारत वास्तविक रूप से एक महल भी जिसका निर्माण राजा मानसिंह ने अपनी पत्नी मृगनयनी के लिए करवाया था जो गुजरा थी । अतः इस महल का नाम गुजरी महल पड़ा । वर्ष 1922 में पुरातात्विक विभाग द्वारा इसे एक संग्रहालय में बदल दिया गया ।"[25]

इसका प्रमाण देते हुए वर्माजी ने परिचय पृष्ठ में लिखा है - "जब 1527 में बाबर ने मानमंदिर और गुजरी महल को देखा तब उनको बने 20 वर्ष हो चुके थे । तो सन् 1507 में ये बन चुके थे । गूजरी रानी मृगनयनी के साथ मानसिंह का विवाह 1492 के लगभग हुआ होगा।"[26]

इसके अतिरिक्त सिकन्दर लोदी के पिता बहलोल लोदी का ग्वालियर पर विजय पाने का असफल प्रयास, गयासुद्दीन खिलजी की नरवर पर चढ़ाई, अहमदशाह के पौत्र महमूद बधर्रा का गुजरात का उत्तराधिकारी होना, महमूद बधर्रा का मांडू पर चढ़ाई करने आना, सिकन्दर का धौलपुर पर आक्रमण कर विजय प्राप्त करना, चदेरी के राजा जयसिंह का नरवर पर विजय प्राप्त करने

के लिए सिकन्दर से संधि करना और नरवर किले पर आक्रमण कर विजय प्राप्त करना, सिकन्दर द्वारा नटवर के मंदिर तथा मूर्तिओं को पूरी तरीके से नष्ट करना, अपने बेटे उदा द्वारा राणा कुम्भा का वध, राजगद्दी प्राप्त करने के लिए नसीरुद्दीन का अपने पिता ग्यासुद्दीन को विष देकर मारना, सिकन्दर का ग्वालियर पर पांच बार आक्रमण करना, बार-बार मानसिंह द्वारा पराजित होना और इसी कारण ग्वालियर पर फिर से आक्रमण करने के लिए सिकन्दर का 1504 ई. में आगरा नगर का निर्माण करवाना आदि घटनाएँ ऐतिहासिक सत्य है । जिसके प्रमाण ऐतिहासिक पुस्तकों में मिलते हैं । देखिए उदाहरण -

"सन् 1504 ई. में सुलतान ने आगरा नगर की नींव डाली और कुछ वर्षों बाद सुल्तान स्वयं वहाँ स्थायी रूप से निवास करने लगा ।"[27]

इसके अतिरिक्त उपन्यास में लेखक ने उस समय में आगरा नगर में आये भूकंप का भी वर्णन विस्तार पूर्वक किया है । इसका उल्लेख भी इतिहास में आया है जो इस प्रकार -

सन् 1505 की 6 जुलाई का दिन आगरा के सर्वनाश की बेला थी। उस दिन एक प्रचंद भूकंप आया और इतिहासकार के शब्दों में उस महानाश की क्रीड़ा का चित्र साकार हो उठता है - "वास्तव में यह (भूकंप) इतना भयंकर था कि पहाड़ उलट गये और आलीशान ऊँची-ऊँची इमारतें ढह कर जमीन्दोज हो गई ।....."[28]

उपन्यास में लेखक ने गुजरात का उत्तराधिकारी सुलतान 'महमूद बघर्रा' बताया है । परंतु कुछ इतिहास कार इसे 'महमूद बेगड़ा' तथा कुछ 'महमूद बीगढ़' बताते हैं । ''हरीशचन्द्र वर्मा ने 'मध्यकालीन भारत' नामक पुस्तक में लिखा है -

"अहमद शाह का पौत्र सुल्तान महमूद बेगड़ा तेरह साल की उम्र में सन् 1449 में गद्दी पर बैठा और उसने 1511 तक लगभग आधी शताब्दी तक यशस्वी ढंग से शासन चलाया ।"[29]

रविभानु के मतानुसार - ''उसने महमूद की उपाधि धारण की । इतिहास में वह महमूद बीगढ़ के नाम से प्रसिद्ध है ।''[30]

गुजरात का महमूद बघर्रा नित्य जितना कलेवा और भोजन करता था उसका वर्णन वर्माजी ने उपन्यास में विस्तार से किया है । यह वर्णन ऐतिहासिक सत्य है । ऐतिहासिक पुस्तकों में इसकी पुष्टि हो जाती है । 'तुर्क अफगान कालीन भारत' नामक पुस्तक में इसका उल्लेख इस प्रकार है -

"वह प्रतिदिन गुजराती लौल से एक मन भोजन करता था, इसके अतिरिक्त वह 5 सेर चावल का हलवा बनवा कर आधा शैय्या के बायीं ओर तथा आधा दायीं ओर रख लेता था ताकि जिस करवट उसकी आँख खुले उसी ओर वह खाने लगे और फिर सो जाये । प्रातः काल जलपान के रूप में वह सौ डेढ़-सौ कैले, एक पाव मधु तथा एक पाव मक्खन ग्रहण करता था । वह कहा

करता था, यदि भगवान ने मुझे गद्दी पर न बैठाया होता तो मेरी भूख कौन शान्त करता ।....."[31]

उपन्यास में आये विशेष स्थान ग्वालियर, राई, चंदेरी, माडू, मालवा, दिल्ली, आगरा, अहमदाबाद और मगरोनी के भौगोलिक विवरण यथार्थ है ।

प्रस्तुत उपन्यास ऐतिहासिक एवं काल्पनिक घटनाओं का समिश्रण है और परंपरा अथवा किंवदंतियों का भी इसमें स्वतंत्रतापूर्वक सहारा लिया गया है ।

उपन्यास में आई अटल और लाखी की प्रेम कथा, जनश्रुति पर आधारित है । इस संबंध में डॉ. शशिभूषण सिंहल लिखते हैं -

"राई गाँव के पास यह जनश्रुति प्रचलित है कि मृगनयनी के भाई ने किसी अहीरिन से विवाह किया था । राई गाँव के लोगों ने इस अन्तर्जातीय विवाह का विरोध किया था जिसके कारण मृगनयनी के भाई और उसकी अहीरिन पत्नी नरवर होते हुए ग्वालियर जा पहुँचे थे । बाद में मानसिंह ने राई के पास एक गढ़ी बनाकर उसको उसका अधिपति बना दिया था ।"[32]

उपन्यास में बोधन पूजारी और सिकन्दर द्वारा उसका वध ऐतिहासिक सत्य है। जिसका प्रमाण मैंने पूर्व अध्याय में दिया है । इसके अतिरिक्त मृगनयनी के विवाह के पूर्व मृगनयनी तथा लाखी संबंधी प्रसंग, लाखी की माँ की मृत्यु हो जाना और लाखी का अटल तथा मृगनयनी के साथ रहना, मृगनयनी और लाखों द्वारा मांडू के सिपाहियों का वध करना, विवाह के बाद

लाखी तथा अटल का नरवर के किले में आना और लाखी द्वारा रस्सी का काट जाना, निहाल सिंह एवं कला का प्रेम आदि घटनाएँ कल्पना पर आधारित है ।

5.1.5 दुर्गावती

रानी दुर्गावती उपन्यास 16वीं शताब्दी से संबंधित उपन्यास है । इस उपन्यास में वर्माजी ने अफगान-मुगल संक्रांतिकाल (सन् 1543-1564) के समय को लिया है । ऐतिहासिक तत्वों के लिए लेखक ने उस काल के ऐतिहासिक साहित्य का अध्ययन किया है । उस काल की पुस्तकों के आधार पर लेखक ने मौलिक निष्कर्षों के साथ महारानी दुर्गावती का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है । उपन्यास महारानी दुर्गावती, दिलीप शाह, कीर्तिसिंह, शेरशाह सूरी, हुमायूँ, बाबर, हेमु, अकबर, असफखाँ, बाज बहादुर, बैरमखाँ आदि ऐतिहासिक पात्रों की सत्यघटनाओं पर यह उपन्यास आधारित है । महारानी दुर्गावती उपन्यास की ऐतिहासिक चरित्र-नायिका है । संपूर्ण उपन्यास में उनके जीवन के सम्बन्ध में लिखा गया है । दुर्गावती कीर्तिसिंह की एकमात्र संतान थी बाणविद्या में वह निपुण थी । तलवार इत्यादि चलाने में भी उसकी बराबरी बहुत थोड़े-लोग कर सकते थे । वह बड़ी कुशाग्र बुद्धि की थी । उसका विवाह दिलीप शाह के साथ पिता की संमति से हुआ था परंतु गोंडवाना होने के कारण चंदेल राजा कीर्तिसिंह ने उसका विवाह गुप्त रूप से करवाया । ऐतिहासिक साहित्यों का अध्ययन करके इसकी पुष्टि हो जाती है । अबदुल फजल लिखते हैं -

"उसमें वीरता और उद्योग के आवश्यक तत्वों की कमी नहीं थी और अपनी दूरदर्शी योग्यताओं से वह बड़ी बातें कर लेती थी । उसके (मालवा के) बाजबहादुर और (मालवा में सिरोज के अफगान) कियानों से बड़े-बड़े युद्ध हुए और वह सदैव विजयी हुई..... ।"[33]

उपन्यास में दुर्गावती की विशाल सेना के बारे में वर्मा जी ने वर्णन किया है वह बिलकुल सही है 'अकबर महान' में उसकी सेना के वर्णन का जो प्रमाण मिलता है उसको पढ़कर पुष्टि हो जाती है कि वर्माजी ने उस समय के पुस्तकों का गहरा अध्ययन कर पूरी छान-बीन करके यह उपन्यास लिखा है । उदाहरण देखिये -

"उसके पास 20,000 सवार, 1000 हाथी और काफी अच्छी संख्या में पैदल सैनिकों की एक बड़ी और सुसज्जित स्थायी सेना थी । उसकी कुल शशस्त्र सेनाओं की संख्या और भी अधिक रही होगी ।"[34]

बाज-बहादुर और उसके चाचा को पराजित करना, अकबर के भेजे गये सर्वहार आसफ खाँ के द्वारा उसका युद्ध और युद्ध में पराजित होना उसका प्रमाण भी उस समय के साहित्य में मिलता है ।

"अकबरनामा -भाग-2' में अबुल फजल ने दुर्गावती के पिता का नाम शालिवाहन बतलाया है और उनका जन्मस्थान उत्तर प्रदेश के शठ नामक स्थान में माना है ।"[35]

परंतु उपन्यास में दुर्गावती के पिता का नाम कीर्तिसिंह बतलाया गया है । इस विषय में वर्माजी ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है - "मैंने ढूँढ़-खोज की तो पता चला कि उनका (दुर्गावती) जन्म महोबा (जिला हमीपुर) में हुआ था और रहीं वे विख्यात दुर्ग कालंजर (जिला बाँदा) में अपने पिता के साथ । उनके पिता का नाम कीर्तिसिंह था, कालंजर के राजा । वहीं कीर्तिसिंह जिसने बड़ी बहादुरी के साथ शेरशाह सूरी का सामना महीनों किया था ।....."[36]

"भारत का इतिहास" तथा 'मुगलकालीन भारत' नामक पुस्तक में भी दुर्गावती के पिता का नाम कीर्तिसिंह बतलाया गया है जो कालिंजर के राजा थे ।"[37]

रामचेरी को अबुल फज़ल ने दुर्गावती की बाँदी माना है किंतु वर्मा जी ने दुर्गावती की सहेली के रूप में चित्रित किया है ।

कीर्तिसिंह, दलपति शाह तथा शेरशाह को संबंधित सारे तथ्य इतिहास सम्मत हैं । राजा सुधरसिंह का प्रसंग इतिहासानुमोदिन न होकर परंपरानुमोदित हैं इस संबंध में वर्मा जी ने लिखा है -

"एक दोशद्रोही, जो मध्यकालीन भारतीय इतिहास में होते रहे हैं, कीर्तिसिंह की हार और कालंजर-पतन का कारण हुआ । उस देशद्रोही का वर्णन इतिहास में नहीं है, परंतु परंपरा में है ।"[38]

वर्माजी ने महारानी दुर्गावती तथा अकबर संबंधी अन्य घटनाओं को भी इतिहाससम्मत विवरणों से संपुष्ट किया है । "अकबर के आदेशानुसार 1564 ई.

में आसफा खाँ का गोंडवाना पर आक्रमण करना तथा वीरगति प्राप्त करना आदि ऐतिहासिक घटनाएँ हैं ।''[39]

5.1.6 विराटा की पद्मिनी

प्रस्तुत उपन्यास 1700 शताब्दी से संबंधित है । इस उपन्यास को लिखने की प्रेरणा वर्माजी को श्रीनंद पुरोहित से विराटा की पद्मिनी की कहानी सुनने से मिली थी । इस कहानी को सुनकर वर्माजी इतने आनंदित हो उठे कि 'विराटा की पद्मिनी' उपन्यास लिखने को विवश हो गए ।

यह उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है । यह जनश्रुतियों पर आधारित उपन्यास है । इसकी कथा विराटा तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में प्रचलित हैं । इस उपन्यास के तथ्यों को एकत्रित करने के लिए वर्माजी ने उस कहानी को अन्य लोगों से भी सुना । इस संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा -

''पद्मिनी की कथा जहाँ-जहाँ दाँगी हैं, झाँसी जिसे के बाहर भी, प्रसिद्ध होगी । उपन्यास लिखने के प्रयोजन से मैंने नंदू काका की सुनाई हुई कहानी के प्रचलित अंशों की परीक्षा करने के लिए और कई जगह उसे सुना । इसके पश्चात् मैंने विराटा, रामनगर और मुसावली की दस्तूरदेहियाँ सरकारी दफ्तर में पढ़ी । उनमें भी पद्मिनी के बलिदान का सूक्ष्म वर्णन पाया ।....''[40]

इस कहानी को सत्य बताते हुए सिंहल जी लिखते हैं - ''पद्मिनी अथवा कुमुद की कथा ऐतिहासिक तथा सन् 1700 ई. के आसपास की है। विराटा गाँव (परगना-तहसील मोंठ, जिला झाँसी) की दस्तूरदेही, मिसिल बन्दोबस्त, 1862

ई. में पद्मिनी - संबंधित घटना का उल्लेख है । उर्दू में लिखा है - "विराटा में दाँगी जाति की पद्मिनी थी ।' नवाब कालपी के हमले की वजह से उसे बेतवा नदी में समाधि लेनी पड़ी ।"[41]

परंतु तिवारी के अनुसार यह घटना विराटा की पद्मिनी की मृत्यु के 55 वर्ष की न होकर लगभग 151 वर्ष बाद की होनी चाहिए ।"[42]

उपन्यास में 18वीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में मुगल साम्राज्य समाप्त हो चुका था । भारत के शासन की बागडोर फर्रूखसियर के हाथों में थी परंतु वास्तविक शासन शैयद भाई ही कर रहे थे । यह घटना इतिहास सम्मत है । इसके अतिरिक्त फर्रूखसियर के दुर्दशागृत जीवन को वर्णन वर्माजी ने किया है वह भी वास्तविक है किंतु फर्रूखसियर की कोई भी भूमिका उपन्यास में नहीं है । उपन्यास में केवल उसके नाम का ही उल्लेख हुआ है, जो ऐतिहासिक वातावरण के यथार्थता के निमित्त है।

'फर्रूखसियर' नाम इतिहास में मिलता है । देखिए उदाहरण -

"फर्रूखसियर गद्दी से उतार दिया गया और उसके स्थान पर रफीरशान का बेटा रफीउद्दरजात गदी पर बिठा दिया गया । फर्रूखसियर को अंधा करके जेल में डाल दिया गया और उसकी हत्या कर दी गयी।"[43]

"कुमुद की घटना पूर्णतः ऐतिहासिक है । भले ही वह देवी अथवा साधारण नारी, कुछ रही हो । आज भी वहाँ के निवासी उसे देवी मानते हैं ।

जिस चट्टान से वह नदी में कूदी थी, उस पर अब भी कुमुद के चरण-चिन्ह अंकित हैं ।''[44]

दो विभिन्न काल की घटना को वर्माजी ने एक ही काल में अपनी कल्पना द्वारा मिला दिया है । इस संबंध में उन्होंने स्वयं परिचय पृष्ठ में लिखा है -

''उपन्यास-कथित घटनाएँ सत्य-मूलक होने पर भी अपने अनेक कालों से उठाकर एक ही समय की लड़ी में गूँथ दी गई हैं ।''[45]

उपन्यास में आये देवीसिंह, कुंजरसिंह, पात्र वास्तविक है परंतु नाम काल्पनिक है । गोविन्द जी लिखते हैं -

''दतिया के महाराज विजयबहादुर सिंह उपन्यास के नायकसिंह है । ये अत्यन्त विलासी और सनकी स्वभाव के थे और अनेक रोगों से ग्रस्त थे । दो विवाह करने पर भी कोई पुत्र नहीं हुआ । एक दासी पुत्र अर्जुनसिंह था उपन्यास में उनका नाम कुंजरसिंह है ।''[46]

''विजयबहादुरसिंह सिंह के मरते समय (मृत्यु संवत 1414 वि.) राज पुरोहित वे षड्यंत्र करके भवानीसिंह नामक एक व्यक्ति को उनका दत्तक बना दिया । उपन्यास में वही देवी सिंह है ।''[47]

इस संबंध में वर्माजी ने स्वयं लिखा है - ''देवीसिंह लोचनसिंह, जनार्दन शर्मा, अलीमर्दान इत्यादि नाम काल्पनिक है, परंतु उनका इतिहास सत्य-मूलक है । देवीसिंह का वास्तविक नाम इस समय नहीं बतलाया जा सकता । अनेक

कालों की सच्ची घटनाओं का एक ही समय में समावेश कर देने के कारण मैं इस पुरूष के संबंध की घटनाओं को दूसरी घटनाओं से अलग करके बतलाने में असमर्थ हूँ ।''[48]

अतः प्रस्तुत उपन्यास में इतिहास, परंपरा और कल्पना तीनों का समन्वित रूप देखने को मिलता है ।

5.1.7 टूटे काँटे

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु 1717वीं से 1748वीं शताब्दी तक के, मुहम्मद शाह के राज्यकाल से संबद्ध है । यह वर्माजी का शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है । इसमें कल्पना का भरपूर सहारा लिया गया है । इसके ऐतिहासिक तथ्यों के आधार के लिए वर्माजी ने ''राय चतुरानन कायस्थ की 'चहारे गुलशन', बहादुर सिंह भटनाकर की 'यादगारे बहादुरी', डासन की 'हिस्टरी ऑफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन', इरविन की 'लेटर मुगल्स', अब्दुल करीम खाँ कश्मीरी की 'बयाने बुकाय' आदि पुस्तकों का सहारा लिया है ।''[49]

उपन्यास की मूल-कथा नूरबाई से जुड़ी हुई है । नूरबाई का सादत खाँ के यहाँ नृत्य करना, मुहम्मद शाह के हरम में रहना, शादत खाँ की आत्महत्या, नूरबाई का ईरान जाने की अनिच्छा व्यक्त करना, फलस्वरूप हरम से भाग निकलना, जाटों का उत्थान, शासन की, अव्यवस्था, बाजीराव पेश्वा और मस्तानी का प्रेम, उनका विवाह, मस्तानी के लिए शनिनवर तथा मस्तानी

नामक भवन बनाना, बाजीराव बाजीराव का दिल्ली पर 1737 में यकायक झपटा मारना, मुहम्मद शाह की रंगरेलिया, बाजीराव पेशवा की मृत्यु आदि घटनाएँ इतिहास सम्मत है । जिसका उल्लेख इतिहास की पुस्तकों में मिलता है । बाजीराव और मस्तानी की प्रेम कथा इतिहास प्रसिद्ध है । बाजीराव और मस्तानी का विवाह 11 जनवरी 1730 ई. को हुआ था । ''उसी वर्ष बाजीराव ने पूना में अपने शनिवार 'भवन' का निर्माण किया था । बाद में उसने इस भवन के एक और भाग का निर्माण किया । जिसका नाम उसकी प्रेयसी के नाम पर ही रखा गया ।''[50]

उपन्यास में भी इसका उल्लेख आया है । वर्माजी लिखते हैं -

''बाजीराव को मस्तानी 1730 में मिली थी । एक फरवरी सन् 1730 में मस्तानी के लिए पूना में सोलह हजार रूपए की लागत से एक महल बनवाया था, जिसका नाम शनिवार महल पड़ा ।....''[51]

जिसकी पुष्टि उपन्यास पढ़कर हो जाती है ।

उपन्यास में प्रारंभिक घटनाएँ अर्थात् नूरबाई की दिल्ली छोड़ने तक की समस्त घटनाएँ ऐतिहासिक है और उसके बाद की सभी घटनाएँ काल्पनिक है ।

उपन्यास में नूरबाई, सादत खाँ, निजामुलमुलक, नादिरशाह, बाजीराव पेशवा, मस्तानी, मुहम्मद शाह आदि पात्र ऐतिहासिक है और उनसे संबंधित सभी घटनाएँ भी इतिहास सम्मत है । इसके अतिरिक्त मोहन, रोली, तोता,

चिन्तामन, उसकी पत्नी, शुबराती आदि पात्र काल्पनिक है और उनसे संबंधित सभी प्रसंग ऐतिहासिक न होकर काल्पनिक है ।

उपन्यास में कर्णाटक, मालवा, मथुरा, गोलकुंडा, बीजापुर, दिल्ली, महरौली, भरतपुर, फतेहपुर सिकरी, मालवा, ग्वालियर, अजमेर आदि स्थल वास्तविक है ।

5.1.8 माधवजी सिंधिया

प्रस्तुत उपन्यास का संबंध 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से है । इस उपन्यास के अन्तर्गत वर्माजी ने 18वीं शताब्दी की राजनीतिक परिस्थितियों में पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की शक्ति, पारस्परिक रागद्वेष और ईर्ष्या संग्रस्त मराठे, राजपूत, जाट और सिखों की दयनीय स्थिति, निर्दयी अहमदशाह अब्दावली के निर्मम रक्तपात आदि कथाओं का वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त वर्माजी ने मराठा तथा माधवजी सिंधिया से संबंधित घटनाओं तथा माधवजी के प्रभावशाली जीवन का भी वर्णन किया है । 'माधवजी सिंधिया' वर्माजी का शुद्ध ऐतिहासिक घटनाएँ हैं । इस उपन्यास के ऐतिहासिक तथ्य पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य को लिखने के लिए वर्माजी ने जिन ऐतिहासिक पुस्तकों को लिया है वह इस प्रकार है - ''डॉक्टर यदुनाथ सरकार का 'फाल ऑफ मुगल इंपायर', बूसे का 'एनाल्स ऑफ दि ईस्ट इंडिया', सरदेसाई का 'मेन करेन्ट्स ऑफ मराठा हिस्टरी', फीच का 'कलर्स ऑफ इंडिया', मालकम का मेमायर्स ऑफ सेंट्रल इंडिया, हर्विन का 'लेटर मुगल्स', कर्नल

मैलीसन का 'दि फाइनल फ्रेंच स्ट्रगल इन इंडिया', परशियंस रेकॉर्ड्स ऑफ मराठा हिस्टरी - दिल्ली अफेयर्स, 'कलकत्ता गजेट', 'महदजी शिंदे ह्यांची आदि'।"[52]

प्रस्तुत उपन्यास में वर्माजी ने मुगल साम्राज्य के अंतिम काल का वर्णन किया है । उस समय मुगल साम्राज्य अपनी आखरी साँसें गिन रहा था । इस साम्राज्य की बची खुची शक्तियों को आदिल खान ने उखाड़ फेंका । वस्तुः 18वीं शताब्दी के मध्य में भारत में राजनैतिक शून्यता उत्पन्न हो गयी । मराठा शक्ति ने इस शून्यता को भरने का प्रयास किया । ऐतिहासिक पुस्तकों में मुगल साम्राज्य के पतन का प्रमाण मिलता है । जिसकी पुष्टि हो जाती है । इस विषय में ऐतिहासिक लेखक लिखते हैं -

"औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगलों की सार्वभौम सत्ता पतनोन्मुख हो गई । यद्यपि नाम के लिए मुगलों का अंतिम बादशाह बहादुरशाह जफर 1828 ई. तक सम्राट बना रहा, लेकिन मुगलों की वास्तविक सत्ता इसके 50 वर्ष पहले ही समाप्त हो चुकी थी । शक्तिशाली सार्वभौम सत्ता के अभाव में विभिन्न प्रान्तों के सूबेदार केन्द्रीय सत्ता के नियंत्रण से मुक्त होकर स्वतंत्र राज्यों की स्थापना करने लेंगे । दूसरी ओर औरंगजेब के पश्चात् उसके वंशजों में कोई भी अधिक समय तक राज्य नहीं कर पाया । यह इसी तथ्य से प्रमाणित होता है कि औरंगजेब के पश्चात् 50 वर्षों में एक के बाद एक आठ बादशाहों ने राज्य किया ।" मुगलों में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम न होने के कारण हत्या,

अमीरों के षडयंत्र और शक्ति के बल पर मुगल राजसिंहासन पर अधिकार किया जाने लगा ।

मुगल साम्राज्य के पतन के परिणाम स्वरूप मराठाओं के उत्तर भारत में अपनी शक्ति का विस्तार किया लेकिन इसी बीच अफगानिस्तान के शासक अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब, सिन्ध तथा भारत के अन्य सीमावर्ती सूबों पर आक्रमण करना शुरू कर दिया । अतः उत्तर भारत में अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए मराठों को अब्दाली से युद्ध करना पड़ा । फलस्वरूप मराठों और अब्दाली के बीच इतिहास प्रसिद्ध पानीपत का तीसरा युद्ध हुआ । जिससे मराठों की पराजय हुई ।

उपन्यास में आये अब्दाली तथा पेशवा के नेतृत्व में पानीपत का युद्ध ऐतिहासिक सत्य है । इस युद्ध में मराठाओं के पास आर्थिक सुविधा का अभाव, विरोधी पक्ष का सेना में बेहतर युद्ध सामग्री का होना, पेशवा के पुत्र विश्वासराव की मृत्यु, सदाशिवराव भाऊ की मृत्यु, इब्राहीम खां गार्दी, जनको जी, लगभग सभी अच्छे नेता की मृत्यु तथा होलकर का युद्ध में अन्त तक भाग ना लेना, माधवजी का युद्ध से बच निकलना सभी योद्धा तथा सेना का सर्वनाश, मराठाओं का पानीपत युद्ध में पराजय आदि घटनाएँ इतिहास सम्मत है । जिसका प्रमाण 'भारतीय इतिहास' नामक पुस्तक में मिलता है । देखिए उदाहरण -

"दोनों सेनाओं के मध्य युद्ध 14 जनवरी, 1761 को प्रातः 9 बजे से 4 बजे तक चला । मराठों के तोपखाना के वीर इब्राहीम खां ने 2 बजे तक विरोधी सेना पर कहर ढा दिया किंतु पेशवा के पुत्र विश्वासराव को गोली लगने से मृत्यु हो जाने पर स्थिति बदल गई । उसके शव को लेकर भाऊ युद्ध क्षेत्र से गायब हो गया । उसके जाते ही मराठा सेना भाग खड़ी हुई । अब्दाली की जीत हुई ।"[54]

उपन्यास में आये पुरूष पात्रों में माधवजी सिंधिया, शिहाबुद्दीन, नाजीब, सूरजकमल, जवाहर सिंह, इब्राहिम खाँ गार्दी, अहमदशाह अब्दाली, जयप्पा, दत्ताजी, तुकोजी, विश्वासवार, नारायण राव, पेशवा, रामशास्त्री, राघोवा, रघुनाथ, खंडेराव, जनार्दन फड़नवीस, शिवराव भाऊ, जानकोली, रामचन्द्र गणेश, बाकृष्ण गुप्ते, सफदजं, इले सलावत खाँ, शुजाउद्दौला, अकीवत खाँ, अहमदशाह, अजीमुद्दौला, शाह आलम, जतीबा खां, गुलाम कादिर, तिमूर शाह, शाहबली, शाहअबुल अजीज, हैदरअली, टीपू सुल्तान, कुतुबशाह, शाहफना, हमदानी, नाहरसिंह, राजा माधवसिंह रामलाल आदि वास्तविक पात्र है । इसके अतिरिक्त स्त्री पात्रों में गन्ना, बेगम, उम्दा बेगम, मुगलानी बेगम, ताराबाई, गोपिकाबाइ, अहिल्याबाई, वास्तविक है । और इनसे जुड़ी समस्त घटनाएँ इतिहास सम्मत है । इसके अतिरिक्त बहुत कम पात्र है जो वास्तविक न होकर काल्पनिक है । जिसका उल्लेख स्वयं वर्माजी ने परिचय पृष्ठ में किया है -

"माधवजी सिंधिया' के सब पात्र, केवल बहुत थोड़ों को छोड़कर, ऐतिहासिक है ।"[55]

उपन्यास में कुछ ऐसे पात्र भी है जिनकी उपन्यास में कोई भूमिका नहीं है केवल उनका नाम मात्र उल्लेख हुआ है । जिनके नाम है औरंगजेब, अकबर, छत्रपति शिवाजी, शाहजहाँ, बहादुरशाह जफर आदि ।

'माधवजी' का उपन्यास की प्रारंभिक घटनाओं से कोई संबंध नहीं है। संपूर्ण उपन्यास में माधवजी सिंधिया का प्रसंग आधे उपन्यास के बाद सुसंबद्ध रूप में वर्णित हुआ है ।

''उपन्यास में वर्माजी ने उनका नाम 'माधवजी सिंधिया' बताया है तथा ''ऐतिहासिक पुस्तकों में उनका नाम 'महादजी सिंधिया' बताया गया है ।''[56]

नाम के संबंध में वर्माजी ने परिचय पृष्ठ में ही स्पष्ट कर दिया है-

''कुछ राजदर्शी भी थे उनमें एक बहुत बड़े माधवजी सिंधिया हुए हैं, जिन्हें बोलचाल में महादजी सिंधिया भी कहते हैं ।''[57]

उपन्यास में नायक माधवजी का सपना भारत की सभी शक्तियों को एक सूत्र में बांधकर एक राज्य की स्थापना करना है । उन्होंने अपने प्रयत्नों से मुगल दरबार में मराठों के प्रभाव को बनाए रखा और उत्तर भारत में मराठों की विजय पताका फहरा दी । ब्रिटिश शक्ति तक उनकी सैनिक प्रतिमा से डरती थी । माधवजी के सफल प्रयत्नों द्वारा ही जनवरी 1767 ई. में गोहद के राणा के साथ संघ व्यवस्था हो सकी । इसके अतिरिक्त पेशवा माधवराज को इस बात

की भारी चिन्ता थी कि किसी प्रकार उत्तरी क्षेत्र में मराठा की स्थिति पुनः दृढ़ हो जाए और उत्तर के मराठा अभियान में रामचन्द्र, गणेश, विसाजी कृष्ण, माधवजी सिंधिया आदि ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । और उनके पूर्ण सहयोग से कार्य करते हुए बंगश और सहेला दलों को पराजित किया और इटवा पर अपना अधिकार कायम किया । परिणाम स्वरूप अब्दाली खां पूर्ण शान्त हो गया तथा उसने मराठों को वह समस्त प्रदेश वापस कर दिये जिस पर पानीपत के युद्ध के पहले उनका अधिकार था । इस संबंध में प्रतापसिंह लिखते हैं -

''महादजी सिंधिया' ने पेशवा माधवराव की इच्छा के अनुसार अपना ध्यान दिल्ली दरबार की ओर केन्द्रित कर दिया और जबेत खाँ को हटाकर 1772 में शाहआलम को पुनः सम्राट पद पर आसीन कर दिया । इस प्रकार महादजी के प्रयत्नों से मराठों ने वह स्थिति पुनः प्राप्त कर ली जो सदाशिव राय भाऊ के हाथों से पानीपत की विपत्ति के कारण निकल गई थी ।''[58]

माधवजी ने हिन्दू-मुसलमानों में भारतीय एकता और समग्रता उत्पन्न करने के प्रयत्न किए परंतु कई विदेशी तुर्कों, तूरानी इत्यादि सदा उनके प्रयत्न में बाधा डालते रहे । फिर भी अनेक हिन्दुस्तान मुसलमान माधवजी के आदर्शों के दृढ़ पोषक बने । इसके अतिरिक्त अंग्रेजों से सावधान होने के लिए वे माधवराव पेश्वा से बाते करते थे । क्यूंकि उन्हें बहुत पहले ही अंग्रेजों की प्रसार नीति का आभास हो गया था । इस विषय में परिचय पृष्ठ में वर्माजी ने लिखा है ।

"नीति और सदाचार की कमी अनेक अंग्रेज आगंतुकों में बहुत समय तक बनी रही । माधवजी के युग में वही हाल रहा । भारत के तत्कालीन अधिकांश राजनीतिकों में कदाचार कदाचित् और भी अधिक था। अंग्रेजों के पास अनुशासन और नए-नए अस्त्र-शस्त्र अवश्य थे । इन सबका सामना करने के लिए माधवजी ने कमर कस ली । आँधी-तूफानों की भँवरों और असंख्य धक्कों में - छाती ताने, सिर सीधा किए हुए एक ही माधव - शायद उस युग में दूसरा कोई नहीं ।"[59]

5.1.9 अहिल्याबाई

प्रस्तुत उपन्यास का संबंध 18वीं शताब्दी के भारतीय इतिहास से है। यह एक शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास तथा चरित्रप्रधान उपन्यास है । इस उपन्यास में वर्माजी ने अहिल्याबाई से जुड़ी घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । प्रस्तुत उपन्यास लिखने की प्रेरणा के संबंध में वर्माजी ने लिखा है -

"इंदौर में प्रति वर्ष भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी के दिन अहिल्योत्सव होता चला आता है । 1951 के उत्सव का उद्घाटन करने के लिए अहिल्योत्सव समिति ने कृपापूर्वक मुझे आमंत्रित किया । मैंने उस अवसर पर वचन दिया था कि अहिल्याबाई पर कुछ लिखूँगा ।"[60]

अपनी वचनबद्धता से अनुप्रेरित हो उन्होंने यह उपन्यास लिखा । अहिल्याबाई का ऐतिहासिक परिवेश भी 'माधवजी सिंधिया' उपन्यास जैसा ही है । इसमें प्रायः उन्हीं ऐतिहासिक ग्रंथों को आधार बनाया गया है जो 'माधवजी

सिंधिया' का है । इन ग्रंथों के अतिरिक्त ''सरदेसाई कृत न्यू हिस्टरी ऑफ ध मराठा'' तथा वी.वी.ठाकुर कृत 'लाइफ एंड लाइफ वर्क ऑफ श्री देवी अहिल्याबाई होल्कर' लय कि, 'पुण्य श्लोक' देवी श्री अहिल्याबाई (मराठी), डॉ. उदयभानु कृत देवी अहिल्याबाई (हिन्दी) 'होल्करांची कैफियत (मराठी)' आदि ग्रंथों से विशेष सहायता ली है ।''[61]

इन ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक पत्रों को भी आधार बनाया है । जिनका प्रमाण भी उन्होंने परिचय पृष्ठ में दिया है ।

''इतिहासाची साधने' में पत्र क्र.360, ता.8.12.1789 तुकोजी का पत्र अहिल्याबाई को, क्र.262, ता.18.12.1789 रुक्माबाई का पत्र अहिल्याबाई को, क्र.268, ता.3.2.1790... आदि ।''[62]

अहिल्याबाई इतिहास प्रसिद्ध सूबेदार मल्हारराव होलकर के पुत्र खंडेराव की पत्नी थी । इनका जन्म सन् 1726 में हुआ था और मृत्यु 13-8-1795 को । उपन्यास में अहिल्याबाई के पति खंडेराव होलकर की मृत्यु उनके पुत्र एवं पुत्री का जन्म, पति की मृत्यु के बाद राज्य की शासनव्यवस्था उनके पुत्र मालेराव के हाथों में सौंपना, 1 वर्ष के बाद ही पुत्र मालेराव की मृत्यु, पुत्र की मृत्यु के बाद ससुर की मृत्यु, मृत्यु के बाद अहिल्याबाई का होलकर राज्य की शासन व्यवस्था अपने हाथों में लेना, राज्य का कार्यभार संभालना तथा सेना का काम तुकोजी राव के हाथों में सौंपना आदि इतिहास सम्मत है । इसका उल्लेख उस समय की ऐतिहासिक पुस्तकों में मिलता है । उदाहरण देखिए -

"सन् 1754 में कुम्भेर के युद्ध में उनके पति खंडेराव को वीरगति प्राप्त हुई । वैवाहिक जीवन के इस दुःखद अन्त के साथ उन पर राज्य शासन का उत्तरदायित्व आ गया और सन् 1765 में श्वसुर मल्हार राव की मृत्यु के बाद राज्य का संपूर्ण भार उन्हें ही संभालना पड़ा ।"[63]

उपन्यास में देवी अहिल्याबाई द्वारा राजपूतों का दमन, शासन की बागडोर, गरीबों की सहायता करना, धर्माश्रम बनाना, मार्ग का निर्माण करना, जगह-जगह प्याऊ बनाना, मंदिर बनवाना, नगर गाँवों के लुटेरों का, चोरों का दमन करना, तुकोजी की सेना में भाग लेना, तुकोजी के पुत्र को सुधार मार्ग पर लाने का प्रयत्न करना आदि इतिहास सम्मत है । इनके द्वारा किए गए निर्माण कार्य का उल्लेख वर्माजी ने परिचय पृष्ठ में इस प्रकार किया है -

"अहिल्याबाई ने अपने राज्य की सीमाओं के बाहर भारतभर के प्रसिद्ध तीर्थों और स्थानों में मंदिर बनवाए, घाट बंधवाए, कुओं और बावड़ियों का निर्माण किया, मार्ग बनवाए-सुधरवाए, भूखों के लिए अन्नसत्र (अन्नक्षेत्र) खोले, प्यासों के लिए प्याऊ बिठलाई..... ।"[64]

अहिल्याबाई के निर्माण कार्यों का प्रमाण हमें ऐतिहासिक ग्रंथों में भी मिलता है जिसकी पुष्टि हो जाती है । उदाहरण देखिए -

"रानी अहिल्याबाई ने भारत के भिन्न-भिन्न भागों में अनेक मंदिरो, धर्मशालाओं और अन्नसत्रों का निर्माण कराया था । कलकत्ता से बनारस तक

सड़क, बनारस में अन्नपूर्णा का मंदिर गया में विष्णु मंदिर आदि उनके बनाये हुए हैं ।''[65]

अहिल्याबाई धार्मिक भावना की थी । वह शिव की भक्त थी, शिव की रोज उपासना करती थी, बिना पूजा किए वह अन्न या जल तक मुँह में नहीं रखती थी । उनके दिन की शुरूआत ही शिव की आराधना से होती थी यह इतिहास सम्मत है । इस संबंध में पूनमजी लिखती है -

''कहा जाता है कि रानी अहिल्याबाई के स्वप्न में एक बार भगवान शिव आए । वे भगवान शिव की भक्त थी और इसलिए उन्होंने 1777 में विश्व प्रसिद्ध काशी विश्वनाथ मंदिर का निर्माण कराया ।''[66]

यह मंदिर वर्तमान में भी स्थित है । देखिए नीचे छबि दी गई ।[67]

''वर्तमान मंदिर का निर्माण महारानी अहिल्याबाई, होल्कर द्वारा सन 1780 में करवाया गया था'' बाद में महाराजा रणजीत सिंह द्वारा 1853 में 1000 कि.ग्रा. शुद्ध सोने द्वारा बनवाया गया था ।''[68]

उपन्यास में आये मुख्य पात्र तुकोजी राव, मल्हारवार, माधवजी सिंधिया, यशवंतराव फणसे, काशीराव, रुकमाबाई, मुक्ताबाई, आदि अहिल्याबाई से संबंधित पात्र है, जो ऐतिहासिक सत्य है और उनसे संबंधित सभी घटनाएँ भी ऐतिहासिक सत्य है । इसके अतिरिक्त सिंदूरी, आनंदी, भोपत आदि के नाम काल्पनिक है परंतु पात्र ऐतिहासिक है । इस संबंध में वर्माजी ने परिचय पृष्ठ में स्वयं लिखा है-

''सिंदूरी, आनंदी और भोपत के नाम भर बदल दिए हैं वैसे वास्तविक हैं । अन्य चरित्र ऐतिहासिक है, नाम भी उनके वे ही है ।''[69]

उपन्यास में आयी अहिल्याबाई की पुत्री मुक्ताबाई, यशवंतराव फणसे द्वारा चोरों का दमन, उसका मुक्ताबाई के साथ विवाह, यशवंतराव फणसे की मृत्यु, मृत्यु के बाद मुक्ताबाई का सती होना आदि घटनाएँ ऐतिहासिक सत्य है । देखिए मुक्ताबाई के सती होने का प्रमाण इतिहास में मिलता है ।

''महेश्वर के नर्मदा तट पर चिता स्व नई । यशवंतराव का सब चिता पर रख दिया गया । पति के मस्तक को गोद में लेकर मुक्ताबाई चिता पर बैठ गई । मन्त्रोच्चार होने लगा । वाध्य बजने लगे । चिता प्रज्वलित कर दी गई । सती माता के जय-जयकार से आकाश गुंज उठा।''[70]

उपन्यास में माधवजी सिंधिया और उपन्यास के इतिहास तत्वों में एक दो प्रसंगों की असंगति है ।

'माधवजी सिंधिया' उपन्यास में 'मल्हार राव' को तुकोजी का ज्येष्ठ पुत्र माना गया है ।''[71]

किंतु 'अहिल्याबाई' उपन्यास में उसे (मल्हार राव) को तुकोजी का द्वितीय पुत्र माना गया है ।[72]

उपन्यास में आये भौगोलिक स्थल अहेश्वर, जामघाट, इंदौर, रामपुरा, भानपुरा, सिमरोल, नागेश्वर, पुना, दिल्ली, मंदसौर, धामनगर, मदीदपुर, गौतमपुर आदि यथार्थ है । इन स्थलों को स्वयं वर्माजी ने देखा है । इस विषय में वे लिखते हैं -

''अहिल्याबाई संबंधी स्थानों का भ्रमण करने में मेरे मित्र श्री श्यामलाल पांडवीय, मंत्री, जनकार्य विभाग ने मेरी बड़ी सहायता की । उन्हें उसके लिए अनेक धन्यवाद ।''[73]

5.1.10 कचनार

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक 17वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक के काल से संबद्ध है । इस उपन्यास की सृर्जन प्रेरणा वर्माजी को वस्तुः धमोनी और गोंडों के अतीत ऐश्वर्य और शौर्य से प्रभावित होकर मिली । इस उपन्यास से संबंधित ऐतिहासिक घटनाओं के लिए वर्माजी ने 'नोट्स आन दि ट्रान्जेक्शन आफ दि मराठा एम्पायर, एलविन की 'फोक सांग्ज आफ दि मेखल रेन्ज', नागदपुर के सरकार द्वारा प्रकाशित 'राजगोड्स, सर यदुनाथ सरकार का ग्रान्थ 'फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर'' नामक पुस्तकों का सहारा लिया है ।''[74]

इस उपन्यास की मुख्य घटना दिलिप सिंह और कचनार के प्रणय प्रसंग पर आधारित है । उपन्यास में बुन्देलखंड पर औरंगजेब के अत्याचार, छत्रसाल का दुआवी मुसलमानों मुहम्मद खाँ, बर्गश आदि से युद्ध करना, युद्ध में मुहम्मद खाँ को पराजित करना, बुन्देलखंड का उद्धार करना आदि घटनाएँ ऐतिहासिक सत्य है । जिसका उल्लेख ऐतिहासिक पुस्तकों में मिलता है । देखिए उदाहरण-

"इस कार्य में छत्रसाल महाराज के द्वितीय पुत्र जगतराज जो जैतपुर राज्य के अधिकारी थे, विशेष सहायक हुए । जब दिल्ली दरबार में यह खबर पहुँची तब बादशाह ने जगतराज से युद्ध करने का हुक्म दिया । अभी तक जितने मुसलमान सरदारों ने बुंदेलों से युद्ध किया था उनमें सबसे योग्य मुहम्मद खाँ बंगश ही निकला था । इसलिये दिल्ली दरबार की ओर से मुहम्मद खाँ को बुंदेलों से लड़ने का हुक्म दिया गया । मुहम्मद खाँ बंगश दिल्ली की आज्ञा पाते ही बड़ी भारी सेना तैयार करके बुन्देलखंड पर आक्रमण करने को उद्यत हुआ । इसकी खबर जगतराज मलराज को लग गई और उन्होंने भी अपनी सेना तैयार की । बाजीराव पेशवा का भी संधि के नियमों के अनुसार कर्तव्य था कि वे जगतराज महाराज की सहायता करें । इस कारण बाजीराव पेशवा भी अपनी बड़ी सेना लेकर बुन्देलों की सहायता के लिये आए । बुन्देलों से और मुहम्मद खाँ बंगश से विक्रम संवत 1793 में जैतपुर के समीप फिर से

युद्ध हुआ । इस युद्ध में बुन्देलों और मराठों ने मिलकर मुहम्मद खाँ बंगश को अच्छी तरह हरा दिया ।''[75]

इसके अतिरिक्त तत्कालीन काल में आये दिन युद्धों का होना, लूट, मारकाट, सिंधिया, होलकर और भोंसले आदि का आपस में उलझे रहना, छत्रसाल के वंशघर, सेना-नायकों में, दिवानों में, निरंतर कलह होना, पिंडारीयों का आक्रमण करना, सर्वत्र अराजकता का फैलना आदि घटनाएँ इतिहास संमत है । अर्थात् उस समय का तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति अत्यंत चंचल और अस्थायी थी ।

''उपन्यास में वर्णित सभी घटनाएँ वास्तविक है परंतु उसमें समय और स्थान का फेर हैं इस बात को स्वयं वर्माजी ने परिचय पृष्ठ में लिखा है ।''[76]

उदाहरण देते हुए उन्होंने लिखा है -''डरू की घटना जो उसके भाई के वध से संबंध रखती है धमोनी की नहीं है बल्कि औरछा राज्य स्थित अबोरा से ही लिया गया है । बाकी घटना डरु का कर्नल हो जाना, पिंडारियों द्वारा सागर की लूट में भाग लेना और अन्त में साहस के साथ अपने वध का सामना करना सब ऐतिहासिक घटनाएँ हैं ।''[77]

उपन्यास में गुसाई और महन्त अचल पूरी, उसका अखाड़ा ऐतिहासिक सम्मत है इस विषय में वर्माजी ने लिखा है -

"उस युग में गुसांई सैनिकों के समूह पराक्रम विकास और धनोपार्जन की लालसा से देश के मध्य-भाग में घूमा करते थे । ऐसे एक समूह ने तो एक राज्य ही स्थापित कर लिया जो अब तक चला जा रहा है ।"[78]

सभी घटनाएँ होने पर भी यह उपन्यास को शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की कोटी में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि इस उपन्यास की सभी घटनाएँ विभिन्न कासे संबंधित है जिसे वर्माजी ने एक ही काल में बड़ी सुंदरता से गठित किया है । उपन्यास पढ़ने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि सभी घटनाएँ एक ही काल की है ।

5.1.11 मुसाहिबजू

प्रस्तुत उपन्यास 18वीं शताब्दी से संबंधित है । यह उपन्यास की घटना ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित न होकर जनश्रुति पर आधारित है। यह एक लघु उपन्यास है ।

उपन्यास को घटना के संबंध में वर्माजी ने लिखा है -

"छोटू नाई दतिया का रहनेवाला था । जब मुझे मिला, लगभग अस्सी वर्ष का था । उसने जीवन भर सिपाहीगिरी की थी । दतिया में बँकाजू कोतवाल के सिपाहियों में नौकर रहा था दतिया में अनेक पुरातन प्रथाओं के विध्वंस के साथ इसकी सिपाहीगिरी खत्म हो गई । इस उपन्यास की घटना उसी की बतलाई हुई है ।"[79]

इस उपन्यास में एक ही कथा है जो मुसाहिबजू दलीपसिंह से संबद्ध है । उपन्यास के पात्रों की वास्तविकता के विषय में वर्माजी लिखते हैं - ''उपन्यास के दो नाम मुसाहिब दलीपसिंह और रामसिंह धरेरा सच्चे हैं, शेष कल्पित हैं ।''[80]

इस उपन्यास की कथा भले ही ऐतिहासिक नहीं है किंतु उसकी पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है । प्रस्तुत काल में देश की स्थिति अस्त-व्यस्त थी । विशिष्ट केन्द्रीय शक्ति के अभाव में विभिन्न राज्यों की निरंकुशता लगातार बड़ रही थी । अंग्रेजों अपना पैर जमा रहे थे । छोटे-छोटे राजा नवाब अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखन के लिए प्रयत्नशील हो रहे थे । राजपूतों, मराठों, मुसलमानों के दिन लद रहे थे । चारों ओर एक अराजकता दिखाई दे रही थी । इस संबंध में आर.एस.द्विवेदी जी लिखते हैं -

''भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का इतिहास निरंतर साम्राज्य विस्तार और आर्थिक लाभ प्राप्त करने का इतिहास है । जैसे-जैसे अंग्रेजों की शक्ति बढ़ती गयी उनकी लालसा भी बढ़ती गयी । अधिक से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करना और अधिक से अधिक अपने साम्राज्य का विस्तार करना कम्पनी का लक्ष्य बन गया था ।''[81]

इस उपन्यास की पात्रों एवं पृष्ठभूमि के विषय में वर्माजी लिखते हैं - ''इस उपन्यास के दो नाम मुसाहिब दलीपसिंह और रामसिंह धंधेरा सच्चे हैं, शेष कल्पित हैं । उपन्यास की सब प्रमुख घटनाएँ वास्तविक हैं। कोतवाल ने जिस

प्रकार मुसाहिबजू से बंदूक ले ली थी, वह घटना भी सही है । हमारा वर्तमान समय सवा सौ वर्ष पहले की अवस्था का प्राकृतिक सिलसिला है । उस समय सामंत युग की समाप्ति प्रारंभ हो गई थी, अब उस समाप्ति का अवशिष्ट मात्र है..... ।''[82]

5.1.12 झाँसी की रानी

'झाँसी की रानी' सन 1857 के भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम की संचालिका लक्ष्मीबाई के जीवन पर आधारित शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। इसके संबंध में वर्माजी स्वयम् लिखते हैं - ''मैंने निश्चय किया कि उपन्यास लिखूँगा, ऐसा जो इतिहास के रंग-रेशे से सम्मत हो और उसके संदर्भ में हो । इतिहास के कंकाल में मांस और रक्त का संचार करने के लिय मुझको उपन्यास ही अच्छा साधन प्रतीत हुआ । उस साधन को मैंने जो कुछ राय दे पाया है वह पाठकों के सामने है ।''[83]

इस उपन्यास की सृजन प्रेरणा वर्माजी को पारसनाथ की पुस्तक 'रानी लक्ष्मीबाई' का जीवन चरित्र से मिली । जिसमें यह लिखा था कि रानी लक्ष्मीबाई विवश होकर लड़ी थी । वर्माजी को यह बात मान्य न हुई कि रानी विवश होकर लड़ी थी । प्रतिक्रिया हेतु वर्माजी ने इस उपन्यास को लिखा और अपनी खोज द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि, ''रानी स्वराज के लिए लड़ी, या अंग्रेजों की ओर से झाँसी का शासन करते-करते उनको जनरल रोज से विवश होकर लड़ना पड़ा ।''[84]

इस उपन्यास के ऐतिहासिक तथ्यों के लिए वर्माजी ने उपर्युक्त पुस्तक के अतिरिक्त ''सी.ए. किंकड़े की अंग्रेजी पुस्तक लक्ष्मीबाई रानी ऑफ झाँसी', विष्णुराव गोडसे के मराठी प्रबंध 'भाषा प्रवास', पुस्तकों के अतिरिक्त 1857 के गदर संबद्ध 40-50 चिट्ठियाँ, वानपुर के राजा मर्दन सिंह के पास रानी के पत्रों का विवरण आदि को आधार बनाया है ।''[85]

इस उपन्यास को लिए वर्माजी को तथ्यों को एकत्रित करने में कई वर्ष लग गए । अनेक वर्षों अनुसंधान करने के बाद वे यह उपन्यास लिख पाए ।

इस उपन्यास को वर्माजी ने चार भागों में बांटा है । उपन्यास में गंगाधर राव के पूर्वजों का ऐतिहासिक चित्रण, उनकी संगति में रुची, रानी का बचपन, गंगाधर राव के साथ रानी का विवाह, विवाह के बाद पुत्र की मृत्यु, दामोदर राव को गोद लेना, राजा गंगाधर राव की मृत्यु, अंग्रेजों द्वारा रानी के दत्तक पुत्र को अस्वीकार करना, गद्दी के दावेदार पीरअली का अंग्रेजों से मिलना, झाँसी को कोर्ट किया जाना, रानी से किले को छिन लेना, रानी की अंग्रेजों पर प्रतिक्रिया और प्रतिशोध की भावना, अंग्रेजों की नीति से छावनियों में आक्रोश, रानी का सैन्य संगठन, सिपाहियों का विद्रोह करना, झाँसी राज्य पर, रानी द्वारा पुनः अधिकार होना, रानी और जनरल रोज का भीषण युद्ध, रानी का अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध होना, पीर अली का रानी के महल में जासूस बनकर रहना, जनरल रोज को किले के सारे भेद बताना, दुल्हाजू का देश द्रोही होना, रानी का विरगति प्राप्त होना आदि का जो वर्णन वर्माजी ने किया है सभी इतिहास

सम्मत है । इसका उल्लेख ऐतिहासिक पुस्तकों में भी आया है । वारसनीस द्वारा लिखित ऐतिहासिक पुस्तक 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' में रानी क दत्तक पुत्र के परांग का एक उदाहरण देखिए -

''तारीख 21 नवम्बर सन् 1853 ई. को महाराज गंगाधर राव का देहान्त हुआ । उन्होंने अपनी मृत्यु से पहले दामोदरराव को गोद लिया था, परंतु श्रीमान् गवर्नर जनरल साहब ने यह दत्तक नामंजूर किया । इसलिए भारत सरकार की, तारीख 7 मार्च सन् 1854 ई. की आज्ञा के अनुसार झाँसी का राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया ।....''[86]

रानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु का एक प्रसंग देखिए-

''उस समय एक बहादुर सवारने महारानी के तलवार की कुछ परवा न कर मौका पाकर शीघ्रता के साथ पीछे की ओर से उनके मस्तक पर वार क्रिया । जाल में फँसे हुए सिंह बच्चे पर मस्त हाथी जैसे दन्त प्रहार कर उसे घायल कर देता है वही हाल महारानी पर किये हुए इस वाहक का हुआ । इस प्रखर वार से महारानी के सिरका सारा दाहिना भाग विच्छिन्न हो गया और उनका एक नेत्र बाहर निकल आया । इतने में एक सवारने महारानी की छाती में किर्च भोक दी । इस प्रकार महारानी के शरीर पर कई बड़े-बड़े घाव हो गये और उनकी दशा बहुत खराब हो गई । ऐसी दशा में क्या कोई वीर शत्रु स पूरा बदला लेन के लिए समर्थ हो सकता है ? कदापि नहीं ! इतना होने पर भी अपनी अलौकिक अन्तिम युद्ध कुशलता प्रकट कर महारानी ने अपना वध करन की

इच्छा रखनेवाले उस शूर अंग्रेज योद्धा को उसी समय उसके कर्म का भयानक दंड दे दिया उन्होंन अपनी रक्त प्यासी तलवार से उसे यमराज की वेदी पर बलि चढ़ा दिया और अपना क्षत्रिय धर्म-पूर्ण रीति से सार्थक किया । धन्य है वह शूरता और धन्य है वह साहस ।''[87]

उपन्यास में भी ठीक इसी प्रकार उपर्युक्त दोनों उदाहरणों का वर्णन वर्माजी न किया है । जिसकी पुष्टी उपन्यास पढ़कर हो जाती है ।

उपन्यास में आए लक्ष्मीबाई, मोतीबाई, जूही, नवाबअली, गंगाधर राव, गार्डन, पीरअली, तात्या टोपे, मोरोपन्त, मुगल खाँ, दामोदर राव, बाजीराव पेशवा, नवाब अली, अलीबहादूर, खुदा बखश, गुलाम, झलकारी, कोरिन, भाऊ, सुंदर , मुंदर , बखतवली आदि सभी पात्र ऐतिहासिक है और उनस संबंधित सभी घटनाएँ भी इतिहास सम्मत है ।

उपन्यास में सन् 1857 झाँसी, विठूर, कानपुर, कालपी ग्वालियर, आगरा, आगरा आदि नगरों का जो वर्णन आया है, वह भी इतिहास सम्मत है । इसके अतिरिक्त उपन्यास की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थिति का असंतोषपूर्ण, वातावरण, सांस्कृतिक तत्वों जैसे श्राद्ध, होली हल्दी-कुमकुम का त्यौहार आदि का चित्रण भी इतिहास सम्मत है ।

5.1.18 रामगढ़ की रानी

प्रस्तुत उपन्यास 19वीं शताब्दी से संबंधित शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है । मुसाहिबजू तथा अहिल्याबाई की भाँति यह भी एक लघु उपन्यास ही है ।

1857 ई. की पृष्ठभूमि को लेकर यह उपन्यास लिखा गया है । जिसमें रानी अवन्तीबाई की वीरता का वर्णन है । इसका ऐतिहासिक परिवेश 'रानी लक्ष्मीबाई' की भाँति है । सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण की पृष्ठभूमि दोनों उपन्यास में लगभग एक जैसा है । इस उपन्यास मं वर्णित सभी घटनाएँ ऐतिहासिक है ।

यह उपन्यास की सर्जन प्रेरणा के संबंध में वर्माजी लिखते हैं -

''महारानी दुर्गावती पर उपन्यास लिखने के लि मैं ऐतिहासिक सामग्री का अध्ययन कर रहा था जब C.U. Wills (सी.यू. विल्स) की पुस्तक 'History of the Raj Gond Maharaja of the atpura Range' (सतपुड़ा पर्वत श्रेणी के राजगोंड महाराजाओं का इतिहास) में रामगढ़ की रानी के शौर्य की बात भी पढ़ी-वह सन् 1857 की क्रांति में अंग्रेजी राज के विरूद्ध बड़ी बहादुरी के साथ.. लड़ते-लड़ते मरी थी ।' लालसा हुई कि रामगढ़ की रानी पर भी उपन्यास लिखूँ ।''88 इसी बीच हमीपुर और मंडला जिलों के एक, दो व्यक्तियों ने भी उन्हें रानी अवंतीबाई पर कुछ लिखने के लिए आग्रह किया । इसका उत्तर देते हुए वर्माजी ने वचन दिया कि - ''उपन्यास लिखूँगा, महारानी दुर्गावती पर लिखने के उपरांत शीघ्र ही ।''[89]

इसके उपरान्त 'महारानी दुर्गावती' के बाद उन्होंने 'रामगढ़ की रानी' उपन्यास लिखकर अपना वचन पूरा किया ।

इस उपन्यास को लिखने के लिए वर्माजी ने जगह-जगह जाकर तथ्यों को एकत्रित किया । इसके अतिरिक्त वर्माजी ने ''सी.यू. विल्स के 'सातपुड़ा पर्वत-श्रेणी के राजगोंड महाराजाओं का इतिहास, वाटस के 'हिस्ट्री ऑफ म्युनिटी, जी.एन.सील की 'मध्य प्रदेश और बराट का इतिहास' आदि ग्रंथों का अध्ययन किया ।''[90]

प्रस्तुत काल में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन में सामंतीय जीवन उथल-पुथल था । इसके अतिरिक्त सामान्य जन-नागरिक भी असीम पीड़ा भोग रहे थे । उनकी स्थिति दयनीय थी । इस स्थिति मं भी रानी अवन्तीबाई सन् 1857 की प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में अंग्रेजों के दांत खट्टे किये और अपनी आखरी साँस तक उनसे लड़ती रही । उपन्यास में वर्माजी ने रानी अवन्तीबाई का जो कुछ भी चित्रण प्रस्तुत किया है वह वास्तविक है ।

इसके अतिरिक्त मण्डला में बार-बार बन्दोबस्त होना, इससे किसानों का दुःखी होना, मालगुजारों का इस्तीफा देना, कमिश्नर द्वारा खड़देवरा के मालगुजारों का अपमान करना पुनर्विवाह के टैक्स संबंधी मामलों के कारण रानी का अत्यधिक क्षुब्ध हो उठना, देशी राजाओं द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध की योजना बनाना, योजना का भद खुल जाना, अंग्रेजों द्वारा शंकर शाह तथा राजकुमार रघुनाथ शाह को तोप से बाँधकर उड़वा देना, रामगढ़ की रानी का अंग्रेजों पर चढ़ाई करना तथा उनकी कई चौकियों पर अधिकार कर लेना, रानी अवन्तीबाई का दवहरगढ़ की पहाड़ी पर घिर जाना, रानी के बायें हाथ मं गोली

लगना, अन्त में विजय की आशा न देख स्वाभिमान की रक्षा के लिए अमराव सिंह से तलवार लेकर स्वयं को समाप्त कर देना आदि घटनाएँ इतिहास सम्मत है ।

उपन्यास में सुबेदार बलदेव तिवारी, जगत सिंह, बहादुरसिंह, ठाकुर उमरावसिंह, राजा शंकर शाह, गिरधारी सिंह, रघुनाथ आदि पात्र ऐतिहासिक है और उनसे संबंधित सभी घटनाएँ संपूर्ण वास्तविक है ।

उपन्यास में आये प्रसिद्ध स्थान रामगढ़, सुहागपुर, शाहपुर, मण्डला, जबलपुर, टीकमगढ़, गढ़कोटा, चंदेरी, बानपुरा, गराठे, नौटा, रायपुर, बिछिया, रामनगर, खैरी आदि वास्तविक है । इन स्थलों को स्वयं वर्माजी ने देखा है, सुना है । वे स्वयं वर्माजी न लिखा है -

"उपन्यास लिखने के लिए मेरा उत्साह बढ़ा । यात्रा की । जगह-जगह जंगल-पहाड़ों में घुमा । रामगढ़, रामनगर, शाहपुरा इत्यादि स्थान देखे । श्री मातादीन लगातार मेर साथ रहे । अधिकांश स्थानों की यात्रा में श्री नारायणदत्त भी ।"[91]

5.2 संस्कृति

5.2.1 रीति-रिवाज

भारत जैसे विशाल देश में रीति-रिवाजों एवम् परंपराओं की कमी नहीं है। जहाँ इनमें स्थानीय भिन्नता है वहीं भिन्नता के बीच साम्य के भी दर्शन किये जा सकते हैं । ये रीति-रिवाज किसी भी संस्कृति के आधार तत्व हैं । यए

आचार-व्यवहार, मानवीय भावनाओं, स्थानीय भूगोल और विचारों का परिणाम होते हैं । वर्माजी के उपन्यासों में जिन रीति-रिवाजों का उल्लेख हुआ है, उनमें बुन्देलखण्डी विशिष्ट संस्कृति की स्पष्ट छाप है । इन रीति-रिवाजों का निर्वाह विविध अवसरों पर भिन्न-भिन्न रूपों में किया जाता है । ये विविध अवसर या प्रसंग मुख्य रूप से निम्नलिखित है ।

5.2.1.1 विवाह संबंधित रीति-रिवाज

वर्मा जी के अधिकांश उपन्यासों में विवाह प्रसंग आए हैं । इसी कारण इस अवसर पर प्रयुक्त विविध रीतियों का निर्वाह किस प्रकार किया जाता है उनका भी प्रचुर मात्रा में उल्लेख हुआ है । एक रीति के अनुसार भांवर के समय तक वर एवं कन्या को परस्पर देखने का अधिकार नहीं होता । 'महारानी दुर्गावती' उपन्यास में दुर्गावती व दलपति शाह को भी इस कठोर रीति का पालन करना पड़ता है । उदाहरण देखें - ''अगले दो दिन दुर्गावती को रनिवास में ही रहना पड़ा - रिवाज यही था - दूल्हा भाँवर के पहले दुलहिन को न देख सके, दुलहिन घर से बाहर पैर न रखे ?'' [92]

इसके अतिरिक्त 'कुण्डली चक्र' उपन्यास में भी इस रीति का वर्णन हुआ है । राजगोंडों में वर की गैर मौजूदगी या असमर्थता या रुग्णावस्था में वर की कटार के साथ भाँवर पड़ने की रीति है । विवाह की अन्य रीतियाँ वर का छोटा भाई कर सकता है । 'कचनार' उपन्यास में लेखक ने लिखा है - ''ब्याह के लिये बरात पत्थर गाँव को गई थी । राव दलीपसिंह अस्वस्थ था इस कारण भाँवर

उसकी कटार के साथ पड़ी थी।.... खासतौर पर मानसिंह को, जो नाते में वर का छोटा भाई होने के कारण अपने को वर से कम नहीं समझता था । वधू के घर पर मानसिंह ने वर के सब नेग-दस्तूर निभाये थे ।''[93]

भावरों से पूर्व बारात के स्वागत के लिए कन्या पक्ष के घर के द्वार पर बन्दनवार सजाए जाते हैं । इस रिवाज़ का उल्लेख हमें वर्मा जी के 'विराटा की पद्मिनी' उपन्यास में देखने को मिलता है जब ''बेचारी गोमती की बारात, पालर के युद्ध में, विवाह के लिए आते हुए वर के घायल हो जाने से एवम् विवाह मण्डप के सामने ही घायल वर (देवी सिंह) के मूर्छित हो जाने से, बिना विवाह के लौट जाती है और इस निराश्रिता कन्या के द्वार के बन्दनवार जहाँ के तहाँ सूख जाते हैं ।''[94]

कन्या की विदाई के समय बाँध छोड़ ने के नेग के रूप में लड़की के बड़े भाई अथवा उसके पिता के द्वारा सामर्थ्यानुसार गाय आदि दिये जाने की रीति भी प्रचलित है। 'मृगनयनी' उपन्यास में लेखक ने इस रीति पर प्रकाश डाला है - ''निन्नी के विवाह के समय विदाई बेला पर.... लाखी के हठ पर अटल ने अपनी एक मात्र गाय बँध छोड़ने के नेग में दान की राजा ने दान लेते समय कहा, 'इस गाय का संसार में मूल्य ही नहीं आंका जा सकता ।'''[95]

कन्या की ससुराल में नया नाम रखने की भी रीति वर्मा जी के एक-दो उपन्यासों में देखने को मिलती है । 'कचनार' का उदाहरण देखे जब मन्ना का नाम रखने की चर्चा डरा तथा मानसिंह कहते हैं ।

''डरु - 'अच्छा, भावजरानी का क्या नाम रक्खा जावेगा ?'''

मानसिंह - नाम तो स्त्रियाँ रखवावेंगी ।

मेरी चले तो नाम कलावती रक्खूँ ।''[96]

राजघरानों में वधू आने की खुशी में गायन, नृत्य और नेगाचार किये जाते हैं तथा नई बहू का स्वागत किया जाता है । 'मृगनयनी' उपन्यास का एक उदाहरण देखे -

''ग्वालियर पहुँचते ही उसका स्वागत के प्रदर्शनों का तूफान चकित करने लगा । बाजे, गायन, नगर की सजधज, फूलों और धानों की बरसा, तोरण बन्दनवारों की झुटमुटें, आरतियाँ, जयजयकार के हल्ले ने तो उसको हैरान ही कर दिया ।.... नेगचार के बाद पान-इलायची इत्र इत्यादि सत्कार की सामग्री नाना प्रकार के भोजन, सिर झुकाये हुये दासियाँ.....।''[97]

विवाह के समय कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को टीका, मिलनी व विदाई के समय दिया जाने वाला नगर रूपया, कपड़ा व आभूषण आदि को दहेज कहा जाता है । यह रीति वर्षों से हमारे समाज में चली आ रही है । आधुनिक समाज में यह कुप्रथा एक ज्वलंत सामाजिक बुराई बनी हुई है । वर्मा जी के ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यासों में भी ऐसे प्रसंग तत्कालीन परंपरा व रीति-रिवाज को समेटे हुए हैं । इनके सभी उपन्यासों में बुन्देलखण्डीय संस्कृति का चित्रांकन हुआ है । राजगोंडो में तो यह प्रथा और भी प्रबल रूप लिए नजर आती है । 'कचनार' उपन्यास में राजगोंड राव दलीपसिंह को कन्या

के पिता के यहाँ से दो दासियों-कचनार और ललिता भी दहेज में प्राप्त होती है। इन दासियों द्वारा वरमाला प्रायः नहीं डाली जाती, वैसे वे रानियों के बराबर बर्ताव पाती हैं । उनकी संतान को औरस न होने पर भी उत्तराधिकार मिलता था । गोड लोग इस हीन प्रथा को अपना बड़प्पन मानते हैं ।''[98]

प्रायः भारतीय विवाह से संबंधित सभी रस्में चार-पाँच दिन से कम समय में पूरी नहीं होती । परंतु कभी-कभी इन्हें बहुत शीघ्रता में पूरा किया जाता है । वर्माजी के उपन्यास में भी इस प्रकार के अवसर आए हैं । जब इस परंपरा को कुछ घण्टों में ही सम्पन्न किया गया है । 'कुण्डलीचक्र' में अजित कुमार और पूना तथा 'कभी-न-कभी' में लक्ष्मण और लीला के विवाह इसी तरह हुई हैं ।

विधवा विवाह हमारे समाज में अच्छा नहीं समझा जाता था । परंतु समाज सुधार आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप इस ओर कुछ उदार प्रगतिशील लोगों द्वारा सक्रिय कार्य हुए । उनमें ही 'अमरबेल' के टहलराम एवं विधवा हरकुवरी 'संगम' के युवा रामचरण और विधवा गंगा, 'कचनार' के मानसिंह और विधवा रानी मानवती के विवाह प्रसंगों की गणना की जा सकती है ।

5.2.1.2 जातिगत संबंधित रीति-रिवाज

वैदिक वर्णाश्रम धर्म का प्रादुर्भाव भले ही उच्चादर्श के साथ हुआ था परंतु इसने आगे चलकर जिस संकीर्ण जातिवादी विचारधारा को जन्म दिया उसने समाज में सर्वत्र जातीय कट्टरता और वैमनस्य का विषाक्त वातावरण निर्मित

कर दिया । एक-एक वर्ण में कई जाति भेद उत्पन्न हो गए । इन उपजातियों में आपस में 'रोटी और बेटी' दोनों के व्यवहार निषिद्ध कर दिए गये । मध्ययुग में यह परंपरा अपनी विकृति की चरमावस्था पर पहुँच गई । 'मृगनयनी' उपन्यास में 'राजा मानसिंह केवल राजा होने के नाते ही सुन्दरी मृगनयनी से विवाह कर पाता है अन्यथा राजा तोमर और मृगनयनी गूर्जर है । उदाहरण देखें -'

एक स्त्री बोली, 'तोमरों और गूजरों में ब्याह सम्बन्ध होता है ?'...

'हाँ राजा है । सब कर सकते हैं । ठीक है ?' [99]

प्रायः सभी युगों में सेवा कार्य में रत, निम्न जातियों का प्रवेश मन्दिरों में वर्जित रखा गया है । तिनकी, बुद्धा और मिट्टू सहरिये होने के कारण मन्दिरों में नहीं जा पाते और अपनी असमर्थता पर दुःखी होते रहते हैं - उदा..

'वे तीनों और थोड़े से और, निम्न वर्ग के कई लोगों के रोकने-समझाने पर भी, विष्णु मंदिर की ओर बढ़ गए । परकोटे के भीतर जाने में कोई रोक-टोक नहीं हुई । भीड़ आ-जा रही थी । परंतु जैसे ही बुद्धा ने प्रवेश के लिए मंदिर की देहरी की ओर झुकाव किया कि उसे रोक लिया गया । उसने और उसके भाई-बहिन ने घुसने का प्रयास किया तो धक्का देकर पिछेड़ दिए गए ।"[100]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्ण व्यवस्था जिसे वैदिक ऋषियों ने कार्य की सुविधा के लिए जन्म दिया था आगे जाकर कठोर हो गई और उसने कई आचार विषयक रीति-रिवाजों को जन्म दिया ।

"'गढ़-कुण्डार' उपन्यास का सारा रक्तपात खंगारों और बुन्देलों को लेकर उत्पन्न होता है । बेचारा दिवाकर तो तारा के गृह त्याग के बाद भी इतना साहस नहीं जुटा पाता कि वर्णाश्रम धर्म का उल्लंघन कर तारा से विवाह कर ले । अपनी कायरता को वह आत्मा के संयोग के आवरण में ढंक लेता है ।"[101]

इस प्रकार जाति-पाति की संकीर्णता और रूढ़िवादिता के विष ने भारतीय संस्कृति को ठेस पहुँचाई है ।

5.2.1.3 युद्ध और विजय संबंधित रीति-रिवाज

हमारे देश में युद्ध से संबंधित कुछ आदर्श सर्वकालिक रहे हैं । इन आदर्श अथवा रीतियों का महत्व, रणभूमि में उत्साह बनाए रखने और हिंसा के वातावरण में भी मानवता न भूलने, में पर्याप्त सीमा तक है । रणक्षेत्र में अपने पति अथवा पुत्रों को भेजती हुई भारतीय ललनाएँ कभी नहीं हिचकी हैं । अपने हाथों द्वारा ही वे उन्हें सुसज्जित कर रणयात्रा में भेजती रही है । ऐसे ही एक भावप्रवण अवसर पर किशोर बालक विश्वासराव को उसकी माँ उत्तर-भारत विजय के लिए भेजते हुए क्षण मात्र दुर्बल हो उठती है, उसके अश्रुपूरित नेत्रों को देखकर स्वयं विश्वासराव कह उठता है - "माँ, यह सब क्या हो रहा है ? हम

लोगों को आनन्द मनाते हुए युद्ध के लिए जाने दो । अभिमन्यु तो मुझसे भी कम आयु का था ।''[102]

युद्ध में घायल शत्रु को मारने का निषेध हमारी रणनीति की अपनी विशेषता है । मोहनलाल जाट मुगल खेमे लड़ते हुए मराठा सैनिक शुबराती को घायल समझकर अपने ही सैनिकों से शत्रुता लेकर भी बचाता है किसी निर्णायक युद्ध में जब कि हार अधिक निश्चित हो की अवस्था में जौहर करने की प्रथा भी हमारी संस्कृति का एक अंग है । इसका उल्लेख 'विराटा की पद्मिनी' उपन्यास में हुआ है 'विराटा के मुट्ठी भर दांगी वीर जौहर करते हुए अपने फटे वस्त्रों को हल्दी से रंग कर मुगल सेना से लड़ जाते हैं और वीर गति को प्राप्त करते हैं ।''[103]

युद्ध में विजय प्राप्त करके लौटने पर भारतीय जनता वीरों का स्वागत बड़ी धूमधाम से करती है । ''बाजबहादुर की सेना को परास्त करके लौटने पर गढ़ा के नर-नारी महारानी दुर्गावती का स्वागत सिर पर पुष्पाहार चढ़ाकर एवं आशीर्वाद देकर करते हैं ।''[104]

इस प्रकार उच्च भारतीय आदर्शों का निर्वाह हमें युद्ध की हिंसक क्रूरतम विभीषिकाओं में भी होता दिखाई देता है ।

5.2.1.4 मृत्यु संस्कारों से संबंधित रीति-रिवाज

हमारी संस्कृति में मृत्यु के समय और उसके उपरान्त कई रीतियों का निर्वाह करने का विधान है । वर्मा जी के अनेकों उपन्यासों में इन रीतियों का

वर्णन देखने को मिलता है । 'विराटा की पद्मिनी' उपन्यास का उदाहरण देखे जब राजा ऊर्ध्वश्वास लेने लगे तब -

'हकीम गरजकर बोला, 'महाराज को शांति के साथ परमधाम जाने दीजिए । अब-दो क्षण के और हैं, पीछे जिसे जो दिखाई दे, कर लेना ।''

"राजा को भूमि पर शय्या दे दी गई । मुँह में गंगाजल डाल दिया गया । तोपों और जयजयकार के नाद में राजा नायकसिंह की संसार-यात्रा समाप्त हो गई ।"[105]

'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' उपन्यास में 'रानी लक्ष्मीबाई' और 'मुंदर बाई के शबदाह की चर्चा हुई है ।' उदाहरण देखिए -

'चिता चुनने के पश्चात् रानी लक्ष्मीबाई और मुंदर बाई के शवों को चिता पर देशमुख ने रख दिया और अग्नि संस्कार कर दिया ।''[106]

इसके अतिरिक्त मृत्यु के पश्चात् शवदाह के तेरह दिन बाद शुद्धिकरण की प्रथा भी वर्माजी के उपन्यास देखने को मिलती है । 'कचनार' उपन्यास में इसका उल्लेख हुआ है ।

"तेरहवीं के दिन हवेली में सब लोगों का ध्यान सुचारू रूप से क्रिया के करने में उलझा हुआ था - दलीपसिंह को तो संसार लगभग सूतक के बाद ही शायद भूल गया होगा ।''[107]

और भी कई क्रियाएँ सभी वर्गों और जातियों में सम्पन्न की जाती है । मृत्यु के ठीक एक वर्ष के उपरान्त गोडों में पटा किया जाता है अन्य जातियों में भी यह प्रथा दूसरे नामों से प्रचलित है । इस अवसर पर ब्राह्मण भोजन, दरिद्रों दान पुष्प आदि देने की प्रथा है । मृतक की मृत्यु तिथि पर व अश्विन मास में श्राद्ध करने की भी भारतीय परंपरा रही है । "'झाँसी की रानी' उपन्यास में 'रानी लक्ष्मी बाई अपने मृत पति राजा गंगाधर राव का श्राद्ध पूर्ण श्रद्धा के साथ अश्विन मास में करती है।'"[108]

मृत्यु से संबंधित प्रायः सभी रीति रिवाज सम्पूर्ण भारत में एक से है और इनमें हमारी सांस्कृतिक एकता को बल मिलता है ।

5.2.1.5 अन्य रीति-रिवाज

उपर्युक्त कुछ प्रमुख रीति-रिवाजों को छोड़कर अन्य कई प्रासंगिक रीति भारतीय समानों में प्रचलित हैं । इन रीति-रिवाजों की हल्की-फुल्की झांकी हमें वर्माजी के उपन्यासों में भी देखने को मिल जाती है । इन रीतियों के पीछे हमारी विविध भावनायें एवम् मान्यताएँ छिपी हैं । इन रीतियों का निर्वाह भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न रूपों में किया जाता है ।

हमारे राष्ट्र के उत्तरवर्ती क्षेत्र में विशेषकर बुन्देलखंड में कुमारी कन्या मानवीय होती है । इस क्षेत्र में माता-पिता या भाई-बहन आदि कन्या से चरण स्पर्श नहीं करवाते। ये लोग विवाह के अवसर पर कन्यादान देते हुए स्वयं कन्या के चरण स्पर्श करते हैं। वर्माजी के उपन्यास 'देवगढ़ की मुस्कान' में

वर्माजी ने इस परंपरा का निर्वाह राजा विजयपाल देव से करवाया है । राजा विजयपाल देव नागदत्ता और कुबेरदत्ता को अपनी पुत्रीवत् मानते हैं । इसीलिए उनके द्वारा चरणस्पर्श करने का वर्जन करते हुए कहते हैं कि - ''धरम की बेटी निज की बेटी से कम नहीं होती । अपने यहाँ बेटी-पिता के पैर नहीं छूती ।''[109]

होली हमारी यहाँ का देश भर में मनाया जानेवाला त्यौहार है । इस अवसर पर एक दूसरे पर रंग या गुलाल डालने की प्रथा है । इन दोनों के अभाव में कीचड़ और धूल दोनों ही इसकी पूर्ति कर देते हैं । परंतु रिश्ते में बहिन लगने वाली या बेटी लगने वाली कन्याओं के साथ पुरूष होली नहीं खेलते । "मृगनयनी' उपन्यास में 'राई गाँव की लाखी और निन्नी पर भी, राई गाँव के पुरूष इसीलिए रंग या कीचड़, नहीं डालते, क्योंकि ये गाँव की बहिन बेटी है ।"[110]

5.2.2 धर्म

आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का मूल स्वर है । लोक-परलोक, आत्मा-परमात्मा, आत्मा की अमरता पुनर्जन्म और कर्मफल आदि के बारे में विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के विचार भी भिन्न-भिन्न होते हैं । लेकिन उस अदृश्य शक्ति परमात्मा का अस्तित्व हर धर्म में कायम है, केवल उसके नाम अलग-अलग रख दिये गए हैं । जैसे "'अहिल्याबाई' उपन्यास में कहा गया है - 'संसार की सारी जंगम रचना एक शाश्वत नियम पर काम कर रही है, उसी का नाम कृपा है ।'"[111]

"जिसे विश्व की विशालतम और सुक्ष्मतम महाशक्ति संचालित करती है उसे परमात्मा कहते हैं । परमात्मा की कृपा से लाखों, करोड़ों योनियों में होता हुआ जीव उन योनियों के दोष लेकर मनुष्य योनि में आता है । इस योनि में बुद्धि के साथ ज्ञान का साक्षात्कार होता है । बुद्धि और ज्ञान मनोबल को प्रबल करते हैं । आत्मा के रूप में परमात्मा का अंश मनुष्य को मुक्त होने में सहायता देता है ।"[112]

'महारानी दुर्गावती' उपन्यास में धर्म के बारे में कुछ इस प्रकार बताया है-

"'अतः मनुष्य को निर्भर होकर अपने कर्तव्य पर आरूढ़ रहना चाहिए । कर्म करना मनुष्य के हाथ में है, फल देना भगवान के हाथ में।'"[113]

रानी लक्ष्मीबाई, दुर्गावती और अवन्तीबाई सभी इस विश्वास को मन में बसाकर अपने से कई गुने शक्तिशाली शत्रुओं से लोहा लेती है । संघर्ष के कठिनतम क्षणों में गीता का कर्मयोग रानी लक्ष्मीबाई को कर्तव्य की प्रेरणा देता है ।

आत्मा की अमरता और आवागमन का सिद्धान्त भारतीय दर्शन का सार है । इन्हीं भावनाओं से प्रेरित लक्ष्मीबाई शक्ति और दृढ़ता से स्वतंत्रता संग्राम का संचालन करती है । झाँसी की इस प्रज्ज्वलित दीपशिखा की जीवन ज्योति बुझ जाने पर बाबा गंगादास के इन शब्दों में - ''प्रकाश अनन्त है । वह कण-कण को भासमान कर रहा है । फिर उदय होगा । फिर कण मुखरित हो उठेगा ।''[114]

प्रस्तुत पंक्तियों द्वारा आत्मा के अमरत्व का विश्वास करुण वातावरण को निराशा से उबारता सा प्रतीत होता है । वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में चित्रित लोक की धर्म-भावनाएँ विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा तथा अन्य तत्वों के माध्यम से भी अभिव्यक्त हुई है ।

5.2.2.1 देव दर्शन

भारतीय संस्कृति, भावना प्रधान संस्कृति है । इसी कारण यहाँ का धार्मिक जीवन भी दर्शन शास्त्र के शुष्क सिद्धान्तों से परे हटकर भावना प्रधान हो गया है । इसी भावनात्मक का परिणाम है कि भारतीय जनता ईश्वर को अगम-अगोचर, अजन्मा मानते हुए भी अवतारवादी विचारधारा की समर्थक है और मूर्ति पूजा को धर्म का मुख्य अंग मानती है । उसका देव ऊँचे-ऊँचे सिंहासनों पर मंदिरों में आसीन है । इसीलिए देव दर्शन के लिए मन्दिरों में जाना हिन्दू धर्म का एक अनिवार्य अंग बन गया है । वर्माजी के उपन्यासों में भी कई स्थलों पर देव दर्शन के वर्णन आए हैं। 'महारानी दुर्गावती' उपन्यास का एक उदाहरण देखे - "राजकुमारी दुर्गावती अपने कालिन्जर दुर्ग में स्थित अष्टभुजा दुर्गा देवी की कृपा प्राप्त करने के लिए, प्रायः नित्य उनके दर्शन के लिए मंदिर जाति है । राजा दलपति शाह भी जब कालिन्जर आते हैं, राजा कीर्तिसिंह उन्हें नीलकण्ठ महादेव और भैरव के पूजन के लिए अपने साथ दोनों मन्दिरों पर ले जाते हैं ।" [115]

एक और उदाहरण देखें जहाँ 'टूटे-काटे' की नूरबाई (सरुपा) मोहनलाल के साथ जब मथुरा वृन्दावन जाती है, वहीं उसे कृष्ण की झाँकी मिलती है । मंदिर में स्थिर देव प्रतिमा को देखकर उसे भासित होता है मानो - "भगवान कृष्ण की छोटी सी मूर्ति के ओठों पर मुस्कान है । जैसे वह अपनी मुरली के अमर स्वरों में होकर उस मुस्कान को भरने वाली हो ।..... जैसे वह अपनी मुरली में गा-गाकर कह रहा हो, बड़े-बड़े पहाड़ ऊपर टूटने को आवें, आँधियाँ तूफान तुमको उखाड़ फेंकने के लिए उमड़े, आगे भस्म कर डालने के लिए दौड़े आफतें बिछा देने के लिए घुमड़े, घबडाना नहीं, मैं तुम्हारे कन्धे से कन्धा लगाकर खड़ा हूँ, तुम्हारे पीछे हूँ, आगे हूँ, हर कहीं हूँ - मैं हूँ, मेरी बाँसुरी है, मेरी तान है ।" [116]

इसके अलावा 'कुण्डलीचक्र' में भी देवी भावना देखने को मिलती है । 'पुना' हिन्दू बालिका जिसका एक मात्र पार्थिव सहारा 'माँ' भी मृत्यु द्वारा छीन लिया गया था । ऐसे में अपने जीजा के अत्याचारी षडयंत्रों से दुःखी होकर वह दुर्गा देवी का आश्रय ग्रहण करती है । रात्रि की नीरवता में वह दुर्गादेवी के मंदिर में जाकर, मंदिर में स्थित प्रतिमा को सम्बोधित करते हुए अपने हृदयोद्रेक को प्रकट करते हुए कहती हैं - ''माँ । माँ ।। अनाथों का इस संसार में कोई नहीं हैं । न सही, परंतु उस संसार में तो है । वहाँ भी कोई न हो, तो अब और किस काम के लिए जिऊँ ।''[117]

उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा हम देखते हैं कि वर्माजी के उपन्यासों में, भारतीय देव-दर्शन पद्धति का बड़ा स्वाभाविक एवं वास्तविक वर्णन देखने को मिलता है ।

5.2.2.2 तीर्थ यात्रा

भारतीय अनेकता में एकता बनाए रखने का बहुत सा श्रेय हमारे तीर्थों को दिया जाना चाहिए । प्रति वर्ष लाखों-करोड़ों व्यक्ति भारतवर्ष के कोने-कोने से इन तीनों की यात्रा करने हेतु, एक कोने से देश के दूसरे कोने तक जाते हैं और अपनी श्रद्धा इन स्थानों को भेंट करते हैं । बड़े-बड़े धनपति और राजा महाराजा भी निःस्वार्थ भाव से इन तीर्थों में धर्मशालाएँ और घाट आदि बनावाते रहे हैं । इस प्रकार से देश प्रेम और एकत्व का भी परिचय देते रहे हैं । वर्माजी के उपन्यासों में तीर्थ यात्रा के सन्दर्भ में कई स्थल पढ़ने को मिल जाते हैं ।

उनके 'आहत' उपन्यास का अंगद पुत्र दीपसिंह (दीपू) के द्वारा घर छोड़कर चले जाने पर साधू बन जाता है और साधुओं के अखाड़े के साथ तीर्थों में विचरण करता है । बाद में भी पुत्र की वापसी और घर की सुव्यवस्था पर भी, घर पर रुकना नहीं चाहता और सुखलाल की प्रार्थना पर अनमने भाव से निर्णय देता है कि - ''मेरे साथी अपना मुखिया चन कर अखाड़े अयोध्या जी में चलाते रहे वर्ष में एकाध बार अवश्य यहाँ की तीर्थ यात्रा करके कृतार्थ हुआ करूँगा ।''[118]

इसके अतिरिक्त ''पति की मृत्यु के बाद वीरांगना लक्ष्मीबाई भी अपने केश मुण्डन के लिए काशी तीर्थ की यात्रा करना चाहती थीं परंतु अंग्रेज कमिश्नर द्वारा इस यात्रा की अनुमति न मिल पाने से उनको यह कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा ।''[119]

5.2.2.3 अन्ध विश्वास

समाज में परंपरागत विश्वासों तथा मान्यताओं का भी अपना स्थान है । ये विश्वास लोगों की चेतना का अभिन्न अंग बन जाते हैं । इन लोक मान्यताओं का तर्क या विवेक नहीं होता, बल्कि वे अविच्छिन्न रुढ़ियाँ हैं जिनका इतिहास बहुत पुराना है । ये थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ सदियों से चली आ रही है । ये रूढ़ियाँ आदि मानव से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में बांधे हुए हैं ।

भूत-प्रेत वाद, अवतार वाद, स्वप्न विचार और मनगढ़न्त लोक कथाएँ इसी का परिणाम है । अनपढ निरक्षर भट्टाचार्यों से लेकर, विवेकशील दूरदर्शी राजा-महाराजा और रानियों तक इसमें बँधे हैं । इस अन्धविश्वासों से कई बार धोखा खाकर भी, समाज इनका अस्तित्व यथावत् बनाए रखने में सहायक रहा है । 'मृगनयनी' उपन्यास के राजा मानसिंह तोमर जैसे प्रगतिशील, विवेकशील, व्यक्ति भी इसी अन्धविश्वास के कारण, साधु वेश में आए शत्रु के गुप्तचर को अपनी सैनिक तैयारी की जानकारी दे देते हैं ।[120]

साधु सन्तों में अन्धी श्रद्धा को साथ ही भूत-प्रेतों में अखण्ड विश्वास हमारे अन्धविश्वासों का दूसरा प्रमाण है । 'कुण्डली चक्र' उपन्यास में 'पैलु' और 'बुद्धा' हाथ में झिंझरी लेकर आते हुए पूना के मामा को अंधेरे में भूत समझकर घबरा जाते हैं । इधर मामाजी भी उन्हें भूत समझकर झिंझरी वहीं पटक कर भाग जाते हैं । बेचारा बुद्धा तो डर के मारे वहीं मूर्च्छित भी हो जाता है । और तो और इस घटना का मास्टर अजितकुमार से वर्णन करता हुआ 'पैलू' कहता है - ''आप चाहें माने या न माने, मैंने अपनी आँखों से बड़े-बड़े दांत और बड़े-बड़े नख देखें है । आखों से लौ निकल रही थी ।''[121]

भूत-प्रेतों संबंधी अन्धविश्वास के समतुल्य ही देवी देवताओं के अवतार और भक्तों के सिर पर सवारी आने जैसी धारणाएँ भी हमारे अन्धविश्वासों की पुष्टि करती है । अपने ही आन्तरिक आहलाद की तन्मयता में भाव विभोर होकर नृत्य करती सिन्दूरी को, 'अहिल्याबाई होल्कर' जैसी नारी भी सोच बैठती है - ''इस पर अभी माता का भाव है।''[122]

टोटकों में विश्वास करने वाली भारतीय जनता, झाँसी में फैले प्लेग का कारण अंग्रेजी सरकार द्वारा एक विशेष लालटेन को ठहराते हैं, जिसे रात में जलाने से प्लेग फैलता है । ''इसके अलावा यह भी विश्वास किया जाता है कि अंग्रेजों के पास एक ऐसी शीशी है जिसे रात में खोलने से हिन्दुस्तानीयों को प्लेग हो जाता है ।''[123]

इस प्रकार भारतीय समाज में प्रचलित अन्धविश्वासों का बड़ा सुंदर चित्र वर्मा जी के उपन्यासों में देखने को मिला है । इनका अस्तित्व युगों से चला आ रहा है । थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ इनका रूप बदल-बदल कर समाज में निरन्तर बना रहा है ।

5.2.3 पर्व-त्यौहार

वर्माजी के उपन्यासों में सर्वव्यापी और देश भर में मनाये जाने वाले प्रमुख त्यौहारों के वर्णन के साथ ही साथ बुन्देलखंड की भूमि से जुड़े कुछ विशेष पर्व और त्यौहारों का भी वर्णन आया है । ये सभी त्यौहार हैं - दीपावली, होली, रक्षाबन्धन, विजय दशमी, राम नवमी, गणेश चतुर्थी, अक्षय तृतीया, गणगौर और संक्रान्ति आदि । हिन्दुओं के वर्ष का आरंभ चैत्र मास से होता है । इस माहबसंत अपने पूर्ण यौवन पर होता है । सम्पूर्ण वातावरण प्रकृति की मोहक हरियाली और पुष्पों की सुगन्धि से भरा होता है । ऐसे में समस्त हिन्दू, विशेषकर बुन्देलखंड का हर हिन्दू शक्ति स्वरूपा दुर्गा की पूजा बड़े मनोयोग से करता है । बुन्देलखण्डी भूमि, झाँसी में इस अवसर पर घर-घर में गौरी की प्रतिमा स्थापित की जाती है । स्त्रियाँ वस्त्राभूषण एवं पुष्पों से श्रृंगार कर एक-दूसरे को हल्दी कुमकुम देते हुए, एक दूसरे के सौभाग्य की कामना करती हैं । इस अवसर पर वे युक्तिपूर्वक एक-दूसरे के पति का नाम भी पूछती हैं । युद्ध की विभीषिका भी इस अवसर के हर्षोल्लास को कम नहीं कर पाती । उदाहरण देखिए -

''रानी ने सीधे ही पूछा, 'तुम्हारे पति का नाम ?' झनकारी के पति का नाम पुरन था । पति का नाम बतलाने के लिये व्यग्र थी, परंतु उत्सव की रंगत बढ़ाने के लिए उसने जरा सोच विचारकर एक ढंग निकाला ।''

बोली, 'सरकार, चन्दा पूरनमासी को ही पूरौं - पूरौ दिखात है न ?'

रानी ने हँसकर कहा, 'ओ हो ? पहले ही अरसट्टे में फिसल गई ! पूरन नाम है !'

झलकारी झेंप गई । चतुराई बिफल हुई । हँस पड़ी ।"[124]

दुर्गाष्टमी के अन्तिम दिन राम नवमी मनाई जाती है । रामनवमी का त्यौहार पूरे देश में ही एक से उत्साह से मनाया जाता है । इसी प्रकार का देश व्यापी त्यौहार रक्षाबन्धन भी है । रक्षाबन्धन श्रावण मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है । इस दिन भाई अपनी बहिन से रक्षा का धागा बँधवाता है । कुछ स्थानों पर ब्राह्मण भी पैसा लेकर रक्षा का धागा बाँधने का कार्य करते हैं पर इसमें वह भावनात्मक सौन्दर्य नहीं रह जाता जो बहिन के द्वारा भाई को राखी बाँधने में पाया जाता है । 'संगम' उपन्यास में सुखलाल की पुत्री राजा बेटी, भिखारीदास के पुत्र सम्पतलाल को राखी बाँधती आई थी, परंतु उनके यहाँ से एक अवसर पर अपमानित होकर लौटने के पश्चात् रक्षाबन्धन पर राखी बाँधने नहीं जाती और सम्पतलाल का परिवार संध्या तक इसी आशा में बँधा रहता है कि ''राजा बेटी राखी बाँधने अवश्य आएगी ।''[125]

श्रावण मास में सभी लड़कियाँ अपने-अपने मायके जाती हैं और आकाश की कोड़ में से उमड़ते-घुमड़ते बादलों के साथ झूला झूलती एवं गीत गाती है । श्रावण मास के उपरान्त वर्षा की तीखी बौछारों से युक्त भाद्रपद या भादों मास आता है इस माह में कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथी को जन्माष्टमी एवं शुक्ल पक्षीय चतुर्थी मनायी जाती है । सारा देश इन उत्सवों पर कृष्ण और गणेश की पूजा-अर्चना करता है । वर्माजी के बृहद औपन्यासिक साहित्य में यद्यपि गणेश चतुर्थी को मनाए जाने के प्रसंग आये हैं परंतु कृष्ण जन्माष्टमी के एक भी प्रसंग नहीं हैं । गणेश चतुर्थी के उत्सव की धूमधाम के सम्बन्ध में, वर्माजी के उपन्यास ''झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई'' में गणेश चतुर्थी से लेकर ग्यारस तक उत्सव मनाए जाने का उल्लेख हुआ है । इस अवधि में झाँसी के मन्दिरों में प्रतिदिन झाँकी लगाए जाने एवं नवीन सजावट किये जाने का उल्लेख भी मिलता है ।''[126]

''आहत उपन्यास में भी गणेश चतुर्थी के उत्सव का उल्लेख देखने को मिलता है । इस अवसर पर घर-घर में गणेशजी की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती है। बाद में 'डीलग्यारस' को डोले में गणेशजी की मूर्तियों की यात्रा निकाली जाती है । यह यात्रा किसी नदी या तालाब पर जाकर समाप्त हो जाती है । वहाँ गणेश जी 'सिरा' दिये जाते हैं । यात्रा के आगे ढोल और रमतूलों के ताल पर बच्चे चांचर के डण्डे खेलते हुए नृत्य करते हुए चलते हैं ।''[127]

इस प्रकार यात्रा का उत्साह दुगुना हो जाता है । इस त्यौहार के बाद आश्विन मास अर्थात् कुंआर के महीने में पित्रों के श्राद्ध की परंपरा होती है । झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई उपन्यास में इस तिथि का उल्लेख हुआ है - ''महारानी लक्ष्मीबाई राजा गंगाधरराव का श्राद्ध बड़ी श्रद्धा से करती हैं ।''[128]

श्राद्ध के समाप्त होते ही नवरात्रि और विजयादशमी के त्यौहार आ जाते हैं । 'देवगढ़ की मुस्कान' उपन्यास में इसका उल्लेख वर्माजी ने इस प्रकार किया है-

''विजयादशमी के दिन मेलेवालों की भारी भीड़ दर्शन करने के लिए इकट्ठी हुई । कुछ नर-नारी भजन गाकर मंदिर के अहाते में प्रवेश कर रहे थे, कुछ जय-जयकार करते हुए ।''[129]

दीपावली का वर्णन भी वर्माजी के उपन्यासों में देखने को मिलता है । कार्तिक मास की अमावस्या को दीपावली मनाई जाती है । सोना उपन्यास का उदाहरण देखिए - ''इस उपन्यास में घर-घर लक्ष्मी पूजन होता है और दीपक जलाए जाते हैं । इस अवसर पर फुलझड़ी और पटाखे भी छोड़े जाते हैं ।''[130]

इस के अतिरिक्त झाँसी की रानी, आहत, संगम, अमरबेल आदि उपन्यासों में दीपावली का उल्लेख देखने को मिलता है ।

दिपावली के उपरान्त आनन्द उल्लास का मिश्रित पर्व होली आता है । यह त्यौहार फागुन मास की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है । इस दिन होली जलाई जाती है । ऊँच-नीच का भेदभाव किए बिना सभी होलिका दहन की

तैयारी में लकड़ी इकट्ठी करते हैं । होली के दूसरे दिन धुलेटी मनाई जाती है । इस दिन रंग और कीचड़ से होली खेलने की प्रक्रिया चलती है । 'मृगनयनी' उपन्यास में देवर-भाभी और ननद के नाते लगने वाले सब स्त्री-पुरूष एक दूसरे से होली खेलते हैं । मित्र और सखियों में भी परस्पर होली खेलने में कसर नहीं लगाई जाती है । निम्मी और लाखी भी जम के होली खेलते हैं । जब निम्मी लाखी पर रंग लगाने आती है तब चित्रण देखिए -

''ऊँ.... ऊँ..... निन्नी, हमारे कपड़े मैले मत करो ।''

लाखी ने निवारण करते हुए आमन्त्रण दिया ।

'बाहर निकलो, बाहर, तुमको सिर से पैर तक न रंग दिया और नचा न दिया तो मेरा नाम निन्नी नहीं !' मटकिया वाली ने ललकारा ।

अरे 'रे रे रे रे !!!' लाखी ने हँसते हुए होठों पर - दोनों हाथ रख लिये और आँखें मूंद लीं । उछल-उछल कर और अट्टहास करते हुए निन्नी ने उसको कीचड़ से सान दिया ।.....'' [131]

गोंडो में होली विशेष ढंग से खेली जाती है । इस ढंग को 'जिरिया की होली' और कही-कही 'डगे' की होली भी कहा जाता है । इस का उल्लेख वर्मा जी ने 'रामगढ़ की रानी' उपन्यास में इस प्रकार किया है -

''गोंड स्त्रियाँ और कुछ अन्य जातियों की स्त्रियाँ भी घूँघट डाले लंबे-लंबे बाँस लिये एक तरफ और बचाव के लिए छोटे-छोटे डंडे लिये पुरूष एक तरफ । जब स्त्रियाँ इन पुरूषों पर लाठियाँ का वार करें तब वे इन डंडों से अपनी रक्षा

कर सकें । न कर पाएँ तो चोट खाएँ - स्त्रियों की बला से ! कहीं-कहीं एक पुरूष ऊँचे मोटे खंभे पर गुड़ की ढेली को उतारने के लिए चढ़ता था । सिर और नीचे की देह को कपड़ों इत्यादि से ढँककर । जैसे ही उसने खंभे पर चढ़ना आरंभ किया कि स्त्रियों ने हँसते-गाते लाठियों की बौछार की । ज्यादा मार पड़ी तो आ गए फिर नीचे जहाँ के तहाँ, और कुटते-पिटते, मार सहते ऊपर पहुँच गए तो गुड़ की पारी उनकी । मार बंद, गुड़ सबका ।''[132]

वर्मा जी के उपन्यासों में इन त्यौहारों के अतिरिक्त बुन्देलखंड के स्थानीय त्यौहारों और पर्वों का भी वर्णन हुआ है । ये पर्व और त्यौहार स्थानीय होते हुए भी अधिकांश हिन्दुओं द्वारा मनाए जाते हैं, इसलिए पर्याप्त महत्व रखते हैं । इनमें अक्षय तृतीया, गंगा दशहरा, कार्तिक स्नान, सुआटा का विवाह, गणगौर और मकरसंक्रान्त मुख्य है ।

5.2.4 खान-पान

वर्माजी के उपन्यासों में भोजन, पंगतों, जेवनारों या भोज्य पदार्थों का बहुत कम वर्णन मिलता है । मुख्य रूप से इन अवसरों का वर्णन वर्माजी की रुचि का विषय नहीं रहा है । प्रासंगिक रूप में ही इन स्थलों को थोड़ा बहुत छुआ गया है । इन प्रसंगों में कुछ प्रसंग उल्लेखनीय है । इन प्रसंगों में युगानुरूप भोजन के पदार्थों में भिन्नता का, वर्माजी के सतर्क साहित्यकार ने, पूरा-पूरा ध्यान रखा है ।

वर्माजी के उत्तर वैदिक युग से सम्बन्धित उपन्यास भुवन-विक्रम का उदाहरण देखिए - ''उत्तर वैदिक युग में भोजन की सुस्वादुता पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता था जितना कि उसकी पौष्टिकता पर दिया जाता था । इसलिए भुख, प्यास और थकान से वस्त कविन्जन को, नैमिष्यारण्य के एक ग्राम की ग्राम्य बालाएँ फल देकर सहायता पहुँचाती है ।''[133]

'टूटे काँटे', सोना, प्रेम की भेंट उपन्यासों के अभावग्रस्त कृषक, सुखे, भुने चने और गुड अथवा केवल भुने चनों से ही अपना कलेवा या भोजन कर लेते । अधिक हुआ तो वे 'कढ़ी-रोटी' बना लेते थे । 'प्रेम की भेंट उपन्यास में इसका उल्लेख हुआ है । देखिए उदाहरण जब उजयारी के पिता भोजन की चर्चा करते हुए कहते हैं -

''कढ़ी-रोटी बन गई या दाल रोटी बन गई ।''[134]

पूरी, सब्जी, दही, रायता, मिष्ठान का आयोजन विशेष अवसरों पर ही किया जाता रहा है । 'देवगढ़ की मुस्कान' उपन्यास में इस का उल्लेख देखने को मिलता है । ''राव खड्गसिंह के आतिथ्य के लिए सेठ धनपाल स्वर्ण और रजत पात्रों में सागभाजी और दही आदि परोसने की सलाह अपनी पत्नी प्रियंवदा को देता है ।''[135]

विशेष अवसरों पर भी भारत की दरिद्र जनता खास प्रकार के आयोजनमय भोजन नहीं बना पाती । इसलिए ''कचनार उपन्यास में अक्षय-तृतीया के अवसर पर गोंडवाने के गोंड दाल-चावल, बड़े-मंगोड़े, कढ़ी-समूदी और

रोटी बना लेते हैं । साधारण जन में भी ये सम्पन्न समझे जाने वालों का भोजन है और दरिद्र परिवार तो चावलों का पेय (पेज) बनाकर ही त्यौहार मना लेते हैं ।''[136]

मांस एवं मदिरा का प्रयोग हमारी संस्कृति और समाज में वर्जित नहीं है । इसका उल्लेख वर्मा जी ने गढ़-कुण्डार उपन्यास में किया है । 'खंगारों का विनाश इसी मांस और मदिरा के माध्यम से किया गया था ।''[137]

आधुनिक युग में भले ही धूप की गर्मी के बाद भी चाय भी ली जाती हो परंतु सामन्त युग में धूप और पसीने से लत पथ व्यक्ति मीठा ठण्डा शर्बत पीता था । 'मुसाहिब जू' में मुसाहिब जू शिकार से लौट कर आए अपने साथियों के लिए शर्बत बनवाते हैं ।''[138]

भोजन के बाद पान खाने की, एवं शौकिया पान खाने की परंपरा हमारी अपनी परंपरा है । इसका उल्लेख 'महारानी दुर्गावती' में इस प्रकार हुआ है - ''वृद्ध महाराज कीर्तिसिंह को पान बहुत प्रिय थे । उनके समक्ष हर समय पान का भरा हुआ थाल रखा रहता था ।''[139]

इसके अतिरिक्त 'प्रत्यागत' तथा 'रामगढ की रानी' उपन्यास में भी यह परंपरा का उल्लेख हुआ है ।

इस प्रकार इन्हीं सभी प्रसंगों के माध्यम से भारत की खान-पान संबंधी विशिष्ट परंपराओं पर हल्का सा प्रकाश पड़ता है । खाने-पीने के विशेष व्यंजन भारत की अपनी माटी की देन है । परंतु इनका विषद वर्णन वर्मा जी के

उपन्यासों का विषय नहीं रहा है । इसलिए संक्षिप्तता में ही इनमें भारतीयता के दर्शन करे जा सकते हैं ।

5.2.5 आमोद प्रमोद और क्रिडाएँ

मनोरंजन का मानव जीवन में उतना महत्त्व है, जितना जीवन के स्वास्थ्या विकास के लिए सरुचिपूर्ण सुपाच्य भोजन का । मनोरंजन उसके मानसिक और भावनात्मक पोषण का अनुपम आहार है । दिन भर का श्रन्त और बलान्त व्यक्ति यदि समय-समय पर मनोरंजन न करे तो एक दिन मानसिक चिन्ताएँ और उद्वेग उसे कुण्ठित या विक्षिप्त बना देंगे । मनोरंजन मानव को मानसिक विश्रान्ति तो देता ही है साथ ही उसके मन की तहों में दबी हुई वासनाओं और कुण्ठाओं को प्रकाशन का अवसर देकर मन की शान्ति भी देता है । मनोरंजन अथवा आमोद-प्रमोद के कई साधन हैं । इन साधनों में नृत्य, नाटक, गीत, खेल और शिकार आदि साधन है ।

शिकार बुन्देलखंड के लोगों का मुख्य मनोरंजन का साधन रहा है । शिकार में मनुष्य अपने शौर्य एवं सूझ-बूझ का समुचित प्रयोग करता है । वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में शिकार वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है । उनके 'भुवन विक्रम' उपन्यास का एक उदाहरण देखिये -

''शिकार करना राजा-महाराजाओं के लिए जहाँ मनोरंजन का काम करता था ।''[140]

'मृगनयनी' उपन्यास में भी शिकार मनोरंजन के चित्रण देखने को मिलते हैं । वहीं सामान्य लोगों के जनता के लिए शिकार आजीविका का माध्यम भी था । उदाहरण देखिये -

'फिर खाने के लिये क्या बचेगा ?' अटल ने मृदुलता के साथ पूछा ।

'ज्वार में भुट्टे आ गये हैं पकने तक उनसे काम चलायें ।' निन्नी ने बतलाया ।

लाखी ने उत्तर दिया, 'जाड़ा पड़ने लगा है, जंगल का घास सूख गया है, कुछ जानवर ढूँढ़ने से मिल ही जायेंगे । उनसे काम चलेगा । नदी में मछलियाँ आ गई हैं । उनको भी देखो ।''[141]

पुरूष ही नहीं बुन्देलखंड की स्त्रियाँ भी शिकार करने में पुरूषों से किसी प्रकार शौर्य की साक्षात् प्रतिमाएँ निन्नी ब लाखी अरने, भैसें, सुअर, नाहर, चीतल आदि का शिकार बड़ी आसानी से कर लेती है ।

इस प्रसंग में दुर्गावती का अपूर्व उत्साह भी दिखाया गया है । तीर और बन्दूक का निशाना लगाने में उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है । उसे शिकार का ऐसा नशा है कि शेर की खबर सुनते ही व वन की ओर चल पड़ती है । एक साथ दो-दो शेरों का शिकार करना दुर्गावती के साहस उत्साह और शौर्य का परिचय देता है ।[142]

खेल-तमाशे, नृत्य व नाटक आदि हमारे मध्ययुगीन समाज के मुख्य मनोरंजन के साधन रहे हैं । वृन्दावनलाल वर्मा ने मनोरंजन के साधन खेल

तमाशों के वर्णन द्वारा भी बुन्देलखण्डी यह संस्कृति का चित्रण किया है । खेल तमाशों के धनाभाव में सामान्य जनता बिना किसी व्यय के उपलब्ध मनोरंजन कबड्डी, गिल्ली-डंडा और काँच की गोलियों के माध्यम से कर लेती है । 'अमरबेल' उपन्यास का एक उदाहरण देखिए - जहाँ गुल्ली-डंडा खेल का उल्लेख हुआ है - ''जब देश राज के साथ कार में अंजना कहीं घर की ओर जाती है तब रास्ते में कई छोकरे गुल्ली-डंडा खेलते हैं ।''[143]

इसके अतिरिक्त संगम, सोना, आहत उपन्यासों में भी खेल तमाशों का उल्लेख हुआ है । इन क्रीडाओं के माध्यम से उसके शरीर और मन दोनों का पुष्ट पाथेय उपलब्ध हो जाता है । हिंसात्मक साधनों में आमोद-प्रमोद के लिए 'सोना' उपन्यास में 'मृर्गों, तीतर-बटेरों, भेड़े, बकरे आदि को लड़ाया जाना राज-परिवारों के विनोदों में शामिल रहा है ।'[144]

वर्मा जी के उपन्यासों में वर्णित आमोद-प्रमोद के साधनों के माध्यम से हमारे समाज में व्याप्त विविध उच्चकोटि एवं निम्नकोटि के मनोरंजन का परिचय मिलता है । तीतर-बटेर लड़ना, द्यूत कीड़ा अपनी तुच्छता और अनुपयोगिता के कारण ही समाज में कम लोकप्रिय रहे हैं । यदि दृष्टि के विस्तार में जाये तो मेले, पर्व त्यौहार, भजन एवं कीर्तन भी इसी श्रेणी के मनोरंजन कहे जा सकते हैं । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आये फिल्म उद्योगों द्वारा भी मनोरंजन का एक साधन और बढ़ा है । वर्मा जी ने अपने आधुनिक परिवेश से लिपटे उपन्यासों में मनोरंजन के इस साधन का भी

उपयोग किया जाता हुआ दिखाया है । 'आहत' उपन्यास का एक उदाहरण देखिये -

''सुखलाल फलवाला यदा-कदा फिल्म देखकर अपना मनोरंजन करता है । वह कभी-कभी दीपसिंह को भी अपने साथ फिल्म दिखाने ले जाता है ।''[145]

"अचल मेरा कोई' उपन्यास में भी कुन्ती अपने पति सुधाकर के साथ फिल्म देखने जाती है ।"[146]

इस प्रकार मनोरंजन के संबंध में वर्मा जी का दृष्टिकोण पर्याप्त व्यापक रहा है । उसमें युगानुरूपता भी रही है ।

5.2.6 वेशभूषा

वर्माजी के अधिकांश उपन्यास बुन्देलखंड की भूमि के इतिहास वृत्तों से सम्पृत है । इसलिए उनमें वेष-भूषा संबंधी भिन्नता कम ही देखने को मिलती है । जो भिन्नता है भी वह काल भेद के कारण है । उनका सबसे प्राचीन युग के कथानक से संबंधित उपन्यास 'भुवन-विक्रम' है । इसमें मेघ का परिचय देते हुए वर्मा जी ने उसकी वेषभूषा का वर्णन इस प्रकार किया है - ''मेघ उतरती अवस्था का दीर्घकाय सावला पुरूष था । सिर पर जटाजूट, ठोड़ी के नीचे लहराने वाली खिचड़ी रंग दाढ़ी, कमर में सफेद सूती परघनी गले में रुद्राक्ष, पैरों में खडाऊँ, शरीर पर ऊनी उत्तरीय ।''[147]

और तो और "इस युग की सामान्य जनता हिरन की खाल के, कोई बकरी की खाल के और कोई तेन्दुओं की खाल की बड़ियाँ पहिनता था । यह आच्छादन उनकी दरिद्रता के द्योतक नहीं, पत्युत दर्प के द्योतक थे ।"[148]

इसके अतिरिक्त पुरूष भी हाथों में कड़े, वलय, गले में हार, कमर में चौड़ी करघनी कमरबन्ध, फेंटा आदि का प्रचलन था ।

इस युग में विद्यार्थी जीवन तपश्चर्या का युग था । वासनाओं के संकलन का समय नहीं । इसलिए विद्यार्थी को आश्रम में प्रवेश के लिए जाते हुए ब्रह्मचारी के वस्त्र धारण करने होते हैं - "राजकुमार भुवन को महर्षि द्यौम्य के आश्रम में भेजते हुए, रानी ममता स्वयं सारे राजसी वस्त्रों को उतार कर केवल कमर में मुंज की रस्सी पहिनाकर विदा करती है ।"[149]

"इस उत्तर वैदिक युग की स्त्रियाँ सामान्यतः अपनी देहों को रंग-बिरंगी कुंचकियों और मोटी रंगीन धोतियों से आवरित करती थी ।"[150]

उत्तर वैदिक युग की सामान्य वेष-भूषा ग्यारहवीं शताब्दी तक आते-आते पर्याप्त भड़कीली-चटकीली हो गई थी । "देवगढ़ की मुस्कान" में सेठ धनपाल की पत्नी प्रियवन्दा बुढ़ी चन्देरी से देवगढ़ जाते हुए बहुमूल्य चन्देरी की साड़ी, गले में बहुमूल्य मोतियों, सोने का हार, हाथ में सोने की चूड़ियाँ, पैरों में चांदी की पैजनियाँ पहिने होती है ।"[151]

पन्द्रहवीं शताब्दी तक आते-आते स्त्रीयों के साथ-साथ राजघरानों के पुरूषों की वेशभूषा से भी उनका ऐश्वर्य झलकता है । 'मृगनयनी' उपन्यास में राजाओं के वस्त्राभूषण की एक झलक देखिए-

''राजा के सिर पर बढ़िया, रेशमी, रंग-बिरंगा मुड़ासा था जिस पर जड़ाऊ कलगी और लिपटी हुई मुक्तमाला । गले में सोने का रत्न जड़ित हार ।''[152]

इस युग के कथानक 'मृगनयनी' में निन्नी और लाखी की वेष-भूषा सामान्य दरिद्र वर्ग की वेष भूषा का प्रतिनिधित्व करती है । उदाहरण देखिए-

''आखेट के लिये जाती हुई निन्नी और लाखी अपने घुटनों तक के लहंगों का कच्छा लगाए, उरोजों को कंचुकी से ढंके और धूप को बचाने के लिए ओढ़नियों को सिर पर लपेट कर अपने दरिद्र वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है । आभूषण के नाम पर दोनों के हाथों में दो-दो मोटी काँच की चुड़ियाँ हैं । निन्नी जूते पहने है और लाखी नंगे पैर । दोनों के गले में मुगों की और काँच के छोटे-बड़े दोनों की माला है ।''[153]

इसके अतिरिक्त इस युग में शिकार के समय मूँगिया वस्त्रों को पहनने का उल्लेख भी किया गया है ।

साड़ी या धोती तथा लहंगा हमारे देश का प्राचीन युग से अब तक चला आ रहा पहनावा है । वर्माजी के कई उपन्यासों में इसका उल्लेख देने को मिलता है । 'अहिल्याबाई' में - "अहिल्याबाई धोती ही पहनती है । जबकि आन्दी ग्रामबाला होने के नाते गहरे लाल रंग का सिलवटों द्वारा लहंगा, जो पैरों

में जकड़े हुए कड़ों से कुछ उप्पर था और जिस पर काले रंग के छोटे-छोटे घने बुन्दों के थे, एक अवसर पर पहिने हुए थी । सिर पर वह ओढ़नी डाले हुए थी, जो सिर पर होती हुई कन्धों के पीछे लहरा रही थी । वह कंचुकी के ऊपर बसन्ती कुर्ता पहिने थी । कुर्ते पर रंग-बिरंगे कपड़ों के छोटे-छोटे चौकोर टुकड़े सिले हुए थे । गले में नीले काँच के गुरियों की माला थी ।" [154]

वर्मा जी के अन्य, सभी उपन्यासों 'कचनार', 'सोना', 'माधव जी सिन्धिया' आदि में प्रायः एक सी ही वेष भूषा का वर्णन आया है । यह बात और है कि "कंचनार उपन्यास में विधवा हो जाने के उपरान्त कलावती सूने गले, बालों में बिना तेल डाले रहती है और मलिन वस्त्र पहनती है ।"[155]

बीसवीं सदी की वेशभूषा का उल्लेख भी वर्माजी के 'अमरबेल' उपन्यास में देखने को मिलता है - "शिक्षिता अंजना देवी की सज्जा एक चित्र तारिका जैसी है । जब वह बांगूर्दन रेलवे स्टेशन पर उतरती है , 'उसके बिखरे बाल, एक विशिष्ट कलाप से बँधे होते हैं । आठों पर लिपिस्टिक' लगी होती हैं । वह बहुमूल्य रेश्मी, हरी चमचम साड़ी पर छोटे छपकोंदार लाल जिमीन वाली चोली पहिने होती हैं ।"[156]

5.2.7 कलाएँ

वर्मा जी का रूझान कलाओं की ओर बहुत रहा है । वे स्वयं एक अच्छे कलाकार थे । संगीत उन्होंने सीखा था । इसलिए उनके उपन्यासों में कला संबंधी चर्चा विस्तार से हुई है । कला संबंधी प्रसंगों में चित्रकला, स्थापत्यकला,

मूर्तिकला, संगीतकला, नृत्यकला सभी के वर्णन वर्मा जी के उपन्यासों में देखने को मिलते हैं । नाट्यकला अपेक्षाकृत नवविकसित कला है, इसलिए उसका वर्णन अठारहवीं शताब्दी के बाद के उपन्यासों में आया है । प्रत्येक कला वहाँ की संस्कृति से अनुप्राणित तथा अनुरंजित होती है । भारतीय कला का आदर्श सत्य, शिवम और सुंदर का समन्वित रूप है । वर्मा जी के उपन्यासों में वर्णित कलाओं का वर्णन इस प्रकार हैं ।

5.2.7.1 चित्रकला

भारत में अन्य कलाओं की भाँति चित्रकला का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। चित्रकला के माध्यम से चित्रकार अपनी तूलिका द्वारा चित्रों में मनोभावों रूपी रंगों को भरता है । 'मृगनयनी' उपन्यास में ग्वालियर के किले में दिवारों पर सुंदर , सजीव चित्र को देखकर मृगनयनी इस कला के प्रति उन्मुख होती है । बाद में 'कला' नामक चित्रकार को उसे चित्रकारी की शिक्षा देने के लिए नियुक्त किया जाता है । कुशाग्रबुद्धि मृगनयनी अल्प समय में ही इस कला में दक्षता का परिचय देने लगती है, उसकी चित्रकला का एक हृदयग्राही उदाहरण देखिए-

'चित्रों द्वारा वह राजा मानसिंह में कला के प्रति प्रेम जगाने के साथ-साथ कर्तव्य की प्रेरणा देकर स्फूर्ति से संचालित किये रहती है । वह चित्रादि द्वारा राजा को प्रेरित करती है । मृगनयनी एक ऐसा विलक्षण चित्र बनाती है, जिसको देखकर राजा मानसिंह दंग रह जाते हैं -

"चित्र दो भागों में विभक्त था । एक भाग में वस्त्राभूषणों से सजी हुई एक सुन्दरी मंच पर बैठी है, एक पखावज लिये हैं । दूसरी स्वरमण्डल का बाद्य, तीसरी वीणा पर उँगलियाँ फेर रही है । चौथी नाच रही है, पाँचवी गा रही है । एक स्त्री रंग-राग और सुगन्धित द्रव्य लिये मंच पर बैठी हुई सुन्दरी के पास सेवा के लिये खड़ी है । सारा दृश्य जैसे किसी रानी का दरबार हो । चित्र के दूसरे भाग में थोड़ी दूर पृष्ठभूमि में, जंगल और पहाड़ है । उनमें कुछ सशस्त्र शत्रु छिपे लुके से जान पड़ते हैं । रानी के दरबार के द्वार के बाहर एक योद्धा अनिश्चय की वृत्ति में खड़ा हुआ है - उसका एक पैर रानी के दरबार में जाने के लिये उठ चुका है, मुँह जंगल में छिपे शत्रुओं की दिशा में है और आँखें उस दरबार की ओर फिरी हुई है । उसके तरकस में तीर नहीं है, कमर में बँधी तलवार म्यान से आधी बाहर है ।"[157]

इसके अतिरिक्त 'रानी दुर्गावती' उपन्यास में भी चित्रकला की झलक देखने मिलती है । 'रानी दुर्गावती' की सखी रामचेरी चित्रकला में इतनी निपुण होती है कि स्मृति के आधार पर ही, पर्वतों की पृष्ठभूमि में अश्वारूढ़ राजा दलपति शाह का चित्र बना देती है । चित्र राजा दलपति शाह के स्वरूप से इतना मेल खाता हुआ है कि रानी दुर्गावती आश्चर्यचकित रह जाती है । एक उदाहरण देखिए -

"अरी तू तो यों ही लगी है चित्र बहुत अच्छा, बढ़िया बना है । नाम मत लिख, दुर्गावती ने कहा और चित्र की रेखाएँ, रंग सारी, ओपनी और लिपाई नीचा

सिर किए देखती रही । ऊँचा माथा, सीधी लंबी नाक, तेजस्वी बड़ी आँखें, ऊँचे कंधे, चौड़ी छाती, लंबी पुष्ट बाँहें । सब बहुत आकर्षक लगीं । पुष्टकाय घोडे पर सवार, कंधे पर धनुष टाँगे, पीठ पर तीरों-भरा तरकस, कमर में तलवार और सिर पर कलगीदार केसरिया रंग का साफा । देख रहा था पहाड़ की चोटी की ओर । चोटी के पीछे एक प्रकाशपुंज की घनी रेखाएँ नीले आकाश की दिशा में ।''[158]

5.2.7.2 मूर्तिकला

अमूर्त को मूर्त रूप देना मूर्तिकला का उद्देश्य होता है । अन्य कलाओं की भाँति मूर्तिकला की साधना भी पवित्रता की अपेक्षा रखती है। अनुभूति व कल्पना, यथार्थ एवं आदर्श का कलात्मक समन्वय ही श्रेष्ठ कलाकृतियों को जन्म देने में समर्थ हो सकता है ।

भारतीय संस्कृति में अपनी किसी देवता के प्रति श्रद्धा को मूर्तिकला द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है । वर्मा जी के उपन्यासों में वर्णित देवी के अनेक मन्दिरों में दुर्गा की मूर्तियाँ होना इसका अच्छा उदाहरण है । 'विराटा की पद्मिनी' में दुर्गा की मूर्ति पूजन व श्रद्धा वहाँ के लोगों व तत्कालीन समाज में विद्यमान मूर्तिकला प्रेम को दर्शाता है । रानी अहिल्याबाई द्वारा अनेक मंदिर व मन्दिरों में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनवाने के प्रसंग मूर्तिकला का अच्छा उदाहरण है ।

'महारानी दुर्गावती' उपन्यास में कालिन्जर में भैरव की एवम् सिंहासन रूढ़ दुर्गा की मूर्तियों के वर्णन आए हैं । उदाहरण देखिये –

''कालिन्जर में स्थित दुर्गा देवी की मूर्ति का स्वरूप बहुत आकर्षक था । यह मूर्ति अष्ट भुजा देवी की थी । पापों का अवतार महिषासुर कटा पड़ा अंकित किया गया था । मूर्ति के ओठों पर विलक्षण मुस्कान और आँखें ध्यान मग्न थीं।''[159]

इसके अतिरिक्त 'मृगनयनी' उपन्यास में मृगनयनी के भवन में, विकसित कमल पुष्प पर स्थित नटराज शिव की मूर्ति ताण्डव की मुद्रा में मृगनयनी की प्रेरणा का कार्य करती है । इस मूर्ति का वर्माजी ने सुंदर वर्णन किया है । उदाहरण देखिए –

''मूर्ति चतुर्भुज थी । एक बायें हाथ में डमरु, दूसरा बायां हाथ वरदमुद्रा में । डमरू वाले हाथ को उस और वाली आभा की लौ छू रही थी । एक बायें हाथ में अग्नि, दूसरा कमल के पार्श्व में पड़े हुए एक बौने की ओर संकेत करने वाला । आग वाले हाथ को दूसरे पार्श्व की लौ छू रही थी । कमर में मणियों की करघौनी । कन्धे पर जनेऊ । एक कान में पुरूषों का जैसे कुण्डल, दूसरे में स्त्रियों की जैसी बाली । केश जूट में मुक्तमाला, एक लट अलग अलग झूलती-झूलती हुई । एक जटा में जटा में साढ़े चार कुण्डलियाँ मारे हुए नाग, छोटा सा मुण्ड और गंगा का प्रतिबिम्ब और ऊपर चौथ का चन्द्रमा । शरीर के आधे भाग पर ब्याध्रचर्म।''[160]

इस प्रकार हमारी मूर्तिकला अधिकांशतः देवी-देवताओ, अवतारों और तीर्थन्करों आदि की प्रतिमाओं आदि में अधिक रमी है, पौराणिक कथाओं नृत्यों की विविध मुद्राओं, नारी की विभिन्न स्थितियों वृक्ष, लताओं और पशु-पक्षियों के बड़े सजीव चित्र शिल्पकारों द्वारा मूर्त रूप पाते रहे हैं ।

5.2.7.3 संगीत कला

यह कला हमारी सबसे प्राचीन कला है । सामवेद के सभी मन्त्र गीतिमय है । हमारी यह कला जनजीवन की कला है । विशेष अवसरों पर गाए जाने वाले गीत, फाग, रिझौर, भजन और लोकगीत इस कला को जनप्रिय बनाते रहे हैं । हमारे देश में आरम्भिक काल में ही संगीत जनजन में उतना ही लोकप्रिय रहा है जितना कि वह संगीताचार्यों के कण्ठों या ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं में था । इसलिए खेत में काम करते हुए कृषकों द्वारा गीत गाते जाने का वर्णन 'सोना' तथा 'अमर बेल' उपन्यासों में हुआ है । 'अमर बेल' उपन्यास में संगीत का वर्णन वर्माजी ने इस प्रकार किया है –

"स्त्रीयाँ कँछोटे लगाए दैत के गीत गा गाकर, कटाई पर चिपटी हुई थी । उनकी काँच की चुड़ियाँ और काँसे के पटेले खड़क-खड़क जा रहे थे, मानो गीत की लय को ताल दे रहे हो ।"[161]

इस के अतिरिक्त 'मृगनयनी' उपन्यास की नीन्नी ग्राम बाला होते हुए भी संगीत में राची रखती है । प्राकृतिक सुरीले कण्ठ की स्वामिनी और ग्रहणशील

प्रतिभा से सम्पन्न होने के कारण वह केवल सुन-सुन कर ही गीत सीख लेती है। उनका प्रियगीत देखिए –

"जाग परी मैं पिय के जगाये,

भाग जगे पिय मोरे घर आये ।"[162]

'महारानी दुर्गावती' उपन्यास में भी संगीत का उल्लेख कई जगह पर हुआ है । "दलपति शाह मनियागढ़ में लगने वाले मेले में ढोल-सारंगी और देवी के गीत सुनकर व करमा आदि नृत्य देखकर बहुत प्रभावित होते हैं । कालिंजर में विवाह उत्सव पर भी गीत व नृत्य का आयोजन किये जाने की परंपरा रही है ।"[163]

भारतीय जन-जीवन में संगीत किस तरह रमा हुआ था इसका आभास हमें उपर्युक्त सभी उदाहरणों में देखने को मिल जाता है । वर्मा जी के उपन्यासों में चित्रित संगीतकला भारतीय संस्कृति के मूल आदर्शों के अनुरूप हैं । संगीतकाल की सार्थकता मानव के उदात्त गुणों का विकास करने में सार्थक मानी गई है ।

5.2.7.4 नृत्यकला

भारतीय नृत्यकला संगीत कला की ही तरह आदि काल से ही पनपती व बढ़ती रही है । वर्माजी के उपन्यासों में प्राचीन कथा, उत्तर वैदिक युग से संबंधित है । इस युग में भी नृत्य के विस्तृत वर्णन न होने पर भी एक हल्की

सी झाँकी गौरी के समक्ष फणिश कन्या हिमानी द्वारा प्रस्तुत किए गए नृत्य के समय मिलती ।

"गोरी को यह फणिश परिपाटी में प्रस्तुत किया गया नृत्य भारतीय नृत्य के समक्ष कुछ ऊट-पटाँग सा लगता है ।"[164]

इस युग में नृत्य कला संगीत कला की तरह मन की मौज के अनुसार अभिव्यक्ति के साधन न रखने के कारण इतनी बहुप्रचलित नहीं रही है, जितनी संगीत कला ।

दशवीं शताब्दी तक आते-आते नृत्य भी संगीत की ही भाँति पर्याप्त जनप्रिय हो गया था । वर्माजी के इस युग के उपन्यासों में ढूँढें – काटें की नूरबाई मुगल बादशाह के दरबार की श्रेष्ठतम नर्तकी थी, देवगढ़ में रहनेवाली नागदत्ता, कुबेरदत्ता और वासन्ती संगीत कला में जितनी दक्ष है उतनी ही नृत्य कला में भी । उनकी कोमल स्वर लहरी का साथ, उनके पग देने में पूर्ण समर्थ हैं । इसके अतिरिक्त 'मृगनयनी' उपन्यास की 'रानी मृगनयनी' के नृत्य का उल्लेख देखिए –

"रानी मृगनयनी कला द्वारा दीक्षा प्राप्त कर नृत्य कला में पारंगत हो जाती है और एक अवसर पर अर्धनारीश्वर की सज्जा में शिव का प्रख्यात ताण्डव नृत्य का प्रदर्शन अपने पति राजा मानसिंह के समक्ष करती है ।"[165]

इस युग के झाँसी राज्य में दुर्गा, मोतीबाई और जूही श्रेष्ठ नर्तकियाँ मानी जाती रही है । आधुनिक युग की कुन्ती अचलकुमार के द्वारा नृत्य की शिक्षा प्राप्त करती है । ये दोनों ही नृत्य के श्रेष्ठ जानकार हैं ।

नृत्य कला श्रेष्ठ आचार्यों, राजमहलों या शिक्षित वर्गों के अनुकरण की वस्तु नहीं है । इसका प्रचार इन वर्गों से भी अधिक सामान्य जनता में पाया जाता है । 'विवाह के अवसर पर, होली, दशहरा आदि त्यौहारों पर गोंड स्त्री-पुरूष अपना लोकनृत्य मेला करते हैं और हृदय के उल्लास को अभिव्यक्ति देते हैं । इसका उल्लेख भी वर्माजी के उपन्यासों में आया है ।'

5.2.7.5 स्थापत्य कला

स्थापत्य कला के सम्बन्ध में वर्माजी के उपन्यास 'मृगनयनी' में ही उल्लेख आया है । 'मृगनयनी' उपन्यास में राजा मानसिंह तोमर, ग्वालियर के अजेय दुर्ग में जिस 'मानमंदिर ' का निर्माण करवाते हैं, उसका उल्लेख इस उदाहरण में देखिए –

विजयजंगम ने सुझाया, ''तैलंग शैली के बनावाइये । ऊपर के दोनों खण्डों में वन-उपवन की भिन्नतापूर्ण विपुल शालीनता, छोटी-छोटी पहाड़ियों की प्रतिमारूप मड़ियां, बड़े पहाड़ों सरीखे आड़े शिखर और आड़े शिखरों पर पहाड़ों के अनेक तुगों के प्रतीक, मंदिर के चारों पार्श्व त्रिभुजाकार, इन कमल-गुजित त्रिभुजों के शिखर पर सूर्य का गोल मण्डल ।''[166]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्माजी के उपन्यासों में सभी कलाएँ अपने शास्त्रीय तथा लोक पक्ष में उभर कर सामने आई है । वर्माजी के पात्रों ने इनका निर्वाह भी बड़े सौष्ठव के साथ, सहज-स्वाभाविक रूप में किया है ।

5.2.3 स्वदेश

अपनी जन्मभूमि से प्रेम होना स्वाभाविक है । वर्माजी को भी अपने प्रदेश बुन्देलखंड से अत्यधिक प्रेम था । इसी बुन्देलखंड की धरती में वर्माजी ने सांस ली ! बड़े हुए । अपने नेत्रों से इसके ध्वस्त ऐतिहासिक स्मारकों को देखा, यहाँ की पथरीली भूमि में घूमें, यहाँ के इतिहास को पढ़ा, यहाँ की सौन्दर्यमयी प्रकृति को निरखा और अपने साहित्य में उन्हें अमर कर दिया । वर्माजी को लोगों ने बुन्देलखंड का उपन्यासकार और उनके उपन्यासों को 'बुन्देलखंडी उपन्यास' कहा है । इसका कारण यही है कि उनके अधिकांश उपन्यासों का क्षेत्र यही बुन्देलखंड है । उसी के इतिहास और समाज का चित्रण उनके उपन्यासों में विशदता से हुआ है । जैसा कहा गया है बुन्देलखंड का इतिहास सामन्ती वीरता, प्रेम और शौर्य से आच्छादित है । वर्मा जी ने उसी को अपनी लेखनी का विषय बनाया है । केवल बुन्देलखंड के इतिहास ने ही वर्माजी को प्रेरणा नहीं प्रदान की, उसका कण-कण उनके लिये अपूर्व प्रेरक सिद्ध हुआ । वहाँ के झरनों का कल-कल शब्द, करौंदे के फूलों से उलझ-उलझ कर बहने वाली वायु, लहराते खेतों के झूमते हुये पौधे वहाँ का स्वच्छन्द वातावरण, वहाँ की प्रकृति का निश्छल प्यार,

घांघरा पहने इठलाती हुई बुन्देलखंडी बालाओं का सौन्दर्य, अपने बीते इतिहास की कहानी कहने वाले जर्जर किले, ध्वस्त गढ़ियाँ, सभी में वर्मा जी ने एक अद्भुत आकर्षण देखा और यही कारण है कि उनके उपन्यासों में इनके चित्र जिस सुंदर ता से उभरे हैं, वह अद्वितीय है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि बुन्देलखंड की प्रकृति वहाँ के इतिहास, वहाँ के लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन ने ही वर्मा जी को लिखने के लिए प्रेरणा प्रदान की । अब तक उन्होंने जितने उपन्यास लिखे हैं एक या दो को छोड़कर सबका क्षेत्र बुन्देलखंड ही है । ऐतिहासिक उपन्यासों में यदि हमें बुन्देलखंड का अतीत इतिहास साकार देख पड़ता है तो सामाजिक उपन्यासों में बुन्देलखंड का आधुनिक जीवन और वह भी ग्रामीण जनता से संबंधित !

वर्माजी के प्रकाशित तेरह ऐतिहासिक उपन्यासों में आठ उपन्यास - 'गढ़ कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'मृगनयनी', 'मुसाहिबजू', 'झाँसी की रानी-लक्ष्मीबाई', 'कचनार', 'महारानी दुर्गावती' तथा 'रामगढ़ की रानी' का संबंध बुन्देलखंड से है । किंतु 'महारानी दुर्गावती' और 'रामगढ़ की रानी' का अर्ध-कथानक ही बुन्देलखंड से संबद्ध है । 'विराटा की पद्मिनी' यद्यपि पूर्ण कल्पना है तो भी बुन्देलखंडीय वातावरण और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में वह भी इतना सजीव हो उठा है कि मालूम पड़ता है कि शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है ।

सामाजिक उपन्यासों में प्रमुख 'अचल मेरा कोई', 'लगन', 'प्रेम की भेंट', 'संगम', 'कुण्डलीचक्र', 'पृत्थागत' और अमरबेल हैं । इनमें से अधिकांश में बुन्देलखंडीय वातावरण और चित्रों की भरमार है । ग्रामीण जीवन के चित्रों के लिए तो ये भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ।

वर्माजी के इन उपन्यासों में बुन्देलखंडीय जीवन के, प्रकृति के, इतिहास के, अनेक बहुमूल्य चित्र छिपे हैं जो अपने सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध हैं । इन चित्रों के प्रति उपन्यासकार का गहरा मोह है जो उनके वर्णनों से स्पष्ट झलक उठता है । उन्होंने इतनी सुक्ष्मता से उनका वर्णन किया है कि उनकी एक-एक रेखा स्पष्ट हो गई है । यही कारण है कि वे पाठकों को भी सुंदर लगते हैं और उन्हें बार-बार पढ़ने पर भी पुनः पढ़ने को जी चाहता है । बुन्देलखंड की नदियाँ, उसके पहाड़, गाँव, झाड़ी, झुरमुट, सबसे लेखक को आत्मीयता है । वहाँ की निश्छल, सौन्दर्यमयी प्रकृति ने जैसा कहा जा चुका है वर्माजी को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है और उसे प्रेरणा प्रदान की है । बुन्देलखंडीय प्रकृति के इसी प्रकार के कुछ चित्रों के उदाहरण मैंने दिये हैं जो इस कथन को बिल्कुल स्पष्ट कर देंगे ।

5.2.3.1 बुन्देलखंड के प्राकृतिक चित्रण

5.2.3.1.1 नदियों का वर्णन

सबसे प्रथम बुन्देलखंड की नदियों को लीजिये ! वर्माजी को उनसे बड़ा मोह है । उनके अधिकांश उपन्यासों में कोई न कोई बुन्देलखंडीय नदी अवश्य कल्लोल करती मिलेगी ! इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में बुन्देलखंड की प्रायः सभी नदियों – बेतवा, पहूज, सिंध, धसान, नर्मदा, यमुना, केन, चंबल, सुखनई इत्यादि का वर्णन मिलता है । बेतवा नदी का वर्णन कई उपन्यासों में हुआ है । उसकी तीव्रधारा का एक दृष्य देखिये –

''बेतवा की धार पुंज के ऊपर पुंज-सी दिखाई पड़ती थी । क्रम अभंग और अनंत सा । जब एक क्षण में ही अनेक बार एक जल पुंज दूसरे से संघर्ष खाता और एक-दूसरे से अनवरत, अथक, अटूट प्रयास करता तब इतना फेनिल हो जाता कि सारी नदी में फेन-ही-फेन दिखलाई पड़ता था । झाग की इतनी बड़ी निरंतर बहती और उत्पन्न होती हुई राशियाँ आड़े आ जाती थीं कि घुड़सवारों को सामने का किनारा नहीं दिखलाई पड़ पाता था ।''[167]

विराटा की पद्मिनी में तो बेतवा के एक से एक सुंदर चित्र हैं परंतु सबसे आकर्षक तो अन्तिम दृश्य में बेतवा की धार में कुमुद का आत्मबलिदान है । बेतवा भी कुमुद को उसी प्रकार गोद में छिपा लेती है जिस प्रकार कोई माँ अपने शिशु को अपनी छाती में समेट लेती है । उस अलीमर्दान को फटकार देती है। उदाहरण देखें –

''उधर तान समाप्त हुई, इधर उस अथाह जलराशि में पैंजनी का 'छम्म' शब्द हुआ । धार ने अपने वक्षस्थल को खोल दिया और तान समेत कोमल कंठ

को अपने कोश में रख लिया । ठीक उसी समय वहाँ अलीमर्दान भी आ गया । घुटना नवाकर उसने कुमुद के वस्त्र को पकड़ना चाहा परंतु बेतवा की लहर ने मानो उसे फटकार दिया ।''[168]

5.2.3.1.2 पहाड़ियों का वर्णन

पहाड़ियों और उनके आस-पास उगी हुई वृक्षावलियों का सौन्दर्य भी वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में साकार कर दिया है । बुन्देलखंड का बहुत कुछ सौन्दर्य विन्ध्याचल पर्वत पर आधारित है । पहाड़ी प्रदेश होने के कारण उसकी सुंदर ता वास्तव में अत्यधिक आकर्षक है ! कुछ उदाहरण निम्नलिखित है –

''उस पार की पहाड़ियों का लहरियादार सिलसिला हरियाली से ढका हुआ था । बादल के सफेद घूमरे टुकड़े पहाड़ियों की चोटी और हरियाली को चूमने के लिये नभ से उतर-उतर कर टकराते चले जा रहे थे ।..... पहाड़ों की कन्दराओं में घुसे हुये, उनको आच्छादित किये हुये, बादलों में होकर वह बकुलावलि छिपती हुई सी मालूम पड़ी । और फिर तितर बितर हुई । जैसे हिलती हुई सांवली, सलोनी चादर में टंके हुए सितारे । पहाड़ पर बड़े बड़े और सघन पेड़ । गहरे हरे श्यामल ।''[169]

'मृगनयनी' उपन्यास का एक उदाहरण देखें, जहाँ राई गाँव के आस-पास छाई पहाड़ियों का सौन्दर्य निखर उठा है ।

"एक दिशा में उन रजत लहरों के उस पार छोटी छोटी पहाड़ियों के ऊपर एक ऊँची पहाड़ी सिर उठाकर धूमिल नेत्रों में चांदनी को भर-सा लेना चाहती थी । ऊँची पहाड़ी का शिखर धुएँ का स्थिर पुंज सा जान पड़ता था । नदी के इस पार दूसरी दिशा में विशाल वृक्षों की सेज के पीछे एक ऊँचा पहाड़ चन्द्रमा को मानों नीचे उतर आने के लिये आवाहन सा दे रहा था । बीच बीच में पतोखी टीं टीं चीं चीं कर देती थी जिससे न तो चांदनी विचलित हो रही थी और न पर्वत के ऊँचे शिखर का ध्यान ही ।"[170]

5.2.3.1.3 झील का वर्णन

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में कुछ झीलों का भी वर्णन किया है, जैसे 'विराटा की पद्मिनी' में पालर की विशाल झील (गढ़ मऊ की झील), 'कचनार' में सागर झील, धामोनी की झील आदि । धामोनी झील का तथ्यात्मक वर्णन कर1 हुए लेखक ने लिखा है –

"धामोजी की झील पहाड़ी दोकों में है और गोल नहीं है । किनारे कोणमय हैं । एक-दूसरे से दूसरा स्थान आसानी से नहीं दिखलाई पड़ता ।"[171]

5.2.3.1.4 वन्य वृक्ष व झाड़ी-झाखाड़ों का वर्णन

वर्माजी को भ्रमण करने में बड़ी रुची थी । शिकार का शौक भ्रमण का मुख्य कारण था । यही कारण है कि जंगलों, खेत-खलिहानों और झाड़-झंखाड़ों के वर्णनों तक में भी वर्मा जी की सूक्ष्म सृष्टि का पता चलता है । बुन्देलखंडीय

वनस्पति के विषय में उनका ज्ञान अपूर्व है । जंगली पेड़ों, झुरमुटों, खेतों आदि के बड़े स्वाभाविक वर्णन उनके उपन्यासों में देखने को मिलते हैं । कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं –

''बिरवई से लगे हुए तीन चार महुए के पेड़ थे ! महुओं के पीछे से एक चक्करदार नाला निकला था । दूसरी ओर वह पहाड़ी थी जो मुसावली पाटा कहलाती है । एक और बीहड़ जंगल । वुजरसिंह महुओं के नीचे गया । एक अहीर की कुछ भैंसें नाले के पास चर रही थीं । कुछ महुए के नीचे ऊँघ रही थीं । एक लड़का कुछ धूप कुछ छाया में सोता हुआ जानवरों की देखभाल कर रहा था । घास आधी हरी और आधी सूखी थी । करघई के पत्ते पीले पड़ पड़ कर गिरने लगे थे । नाले का पानी अभी नहीं सुखा था । कुछ भैंसें उसमें लोट लोट कर शब्द कर रही थीं । चिड़ियाँ इधर से उधर उड़ कर शोर कर रही थीं । सूर्य की किरणों में कुछ तेजी और हवा में उष्णता आ गई थी ।''[172]

'कचनार' उपन्यास के वन्य प्रकृति का चित्रण देखे – उदाहरण –

''पहाड़ों पर करघई, घूमरे बैंगनी रंग की छाई हुई-सी थी । बीच-बीच में कठबेर, तेंदू और अचार की हरी-भरी झुरमुटें । बड़े-बड़े छपकों जैसी । पहाड़ों की उपत्यका में सजा महुआ अचार और सौगन के दीर्घकाय हरे वृक्षों की कतारें ही कतारें, मानो उनका कहीं अन्त ही न हो ।''[173]

'मृगनयनी' उपन्यास के वृक्ष व झाड़ी झंखाड़ों का वर्णन देखिये –

"पहाड़ी के नीचे साल, सागौन, महुए और उचार के बड़े-बड़े पेड़ थे । पहाड़ों के ऊपर करघई की धनी कत्थई रंग की झाड़ी थी । दोनों (मृगनयनी खाली) इस पर चढ़कर उस ओर के नीचे मैदान के जंगल की निरख करना चाहती थी परंतु पहाड़ी की धनी करघई में घुसने के लिए पतली पगडंडी भी न थी ।"[174]

5.2.3.2 बुन्देलखंड के तीज-पर्व और त्यौहार

बुन्देलखंड तीज और त्यौहारों और पर्वों का प्रदेश है । यहाँ के प्रकृति से जूझने वाले लोग अपने आनन्द उल्लास के लिए बहाने ढूँढ़ते रहते हैं और ये बहाने उन्हें तीज-त्यौहारों के रूप में आसानी से मिल जाते हैं । बुन्देलखंड में, होली, दीपावली, दशहरा, नवरात्रि के अतिरिक्त अन्य कई स्थानीय त्यौहार भी मनाये जाते हैं । जिनमें से मुख्य है – गणगौर पूजन, नवदुर्गा पूजन और जानवरों का मेला, श्रीराम व केशवदास जयन्ती, अक्ष्य तृतीया, नाग पंचमी, रक्षाबन्धन, हरछट, जन्माष्टमी, हरतालिका व्रत, श्री गणेश जन्मोत्सव, अनन्त चतुर्दशी, पितृपक्ष, महालक्ष्मी, सुअटा, कार्तिक स्नान, गोवर्द्धन उत्सव, भाई दूज, मकर संक्रान्ति इत्यादि । वर्माजी ने बुन्देलखंड के सर्वांगीण चित्रण-क्रम में वहाँ के विभिन्न पर्व-त्यौहारों का सजीव वर्णन किया है । इसके माध्यम से लोकजीवन का यथार्थ रूप प्रतिबिंबित हुआ है । 'मृगनयनी' उपन्यास का आरंभ ही होली के वर्णन से होता है । इसी प्रकार 'झाँसी की रानी-लक्ष्मीबाई' में हल्दी-

कुंकुम का उत्सव, 'कचनार' में अक्षय तृतीया आदि का वर्णन है । इनमें कुछ त्यौहारों का वर्णन निम्नलिखित है ।

5.2.3.2.1 चैत्र की नवरात्र और पूजन

इस पर्व का प्रसंग 'झाँसी की रानी' उपन्यास में बीसवें परिच्छेद में आया है । इसमें गौर की प्रतिमा स्थापित कर पूजन किया जाता है । इसे ही हरदी कूँ कूँ (हल्दी-कुंकुम) भी करने हैं । "'हल्दी कूँ कूँ' के उत्सव पर स्त्रियाँ एक-दूसरे को रोली का टीका लगाती हैं और उनको किसी-न-किसी बहाने अपने पति का नाम लेना पड़ता है ।"[175]

5.2.3.2.2 होली

होली का त्यौहार प्रायः भारतवर्ष में सर्वत्र धूमधाम से मनाया जाता है । वर्मा जी ने 'मृगनयनी' में इसका वर्णन करते हुए लिखा है –

''पाँच दिन रंगपंचमी तक, होली मनाने की प्रथा थी । किसी युग में एक महीने तक मनाई जाती थी । जीवन के बोझों ने एक महीने से घटाकर पाँच दिन में सीमित कर दिया । अब एक दिन भी दूभर था ।''

सवेरा होते ही कुछ लोगों ने हल्दी की थोड़ी-सी गाँठों को बँटकर रंग तैयार किया और झोंकते-झोंकते होली खेल ली । जिनकी गाँठ में रंग नहीं था उन्होंने रास्ते की धूल बटोरी और पानी में घोली ।

घूँघट डाले हुए, घूँघट के ही भीतर अट्टहास करती हुई स्त्रियों ने एक-दूसरे पर मटीला पानी और कीचड़ उछाला । नाते में जो पुरूष देवर लगते थे उनको दौड़-धूप में हराया और तब मानीं जब कीचड़ से उनको सराबोर कर दिया ।

गाँव की लड़कियों पर कोई पुरूष रंग या कीचड़ नहीं डाल रहा था। नणंद और भावज के परस्पर नाते वाली स्त्रियाँ अवश्य धूल और कीचड़ को एक-दूसरे पर उछाल रही थीं ।''[176]

'रामगढ़ की रानी' उपन्यास में भी गोंडों की होली का विस्तृत वर्णन किया गया है –

''गोंड लोग जिस तरह होली खेलते आए थे उस तरह खेली । गाँव-गाँव से आधी रात बीते नर-नारियाँ अपनी-अपनी होली बनाकर निकल पड़े । ढोल के साथ होली के गीत गाते-गाते दूसरे गाँव में अपने मित्रों-नातेदारों के यहाँ पहुँचे । पुरानी रीति के अनुसार खान-पान हुआ, हँस-हँसकर गाली-गलौच और रंग-गुलाल इत्यादि । फिर दूसरे दिन भी होता रहा । संध्या के पहिले वह खेल हुआ जिसे वह किसी इलाके में 'जिरिया की होली' कहते हैं और कहीं 'डगे की होली' । काठ के एक मोटे ऊँचे खंबे के सिरे पर गुड़ की बड़ी ढेली-पारी-बाँधी गई । गोंड स्त्रियाँ और कुछ अन्य जातियों की स्त्रियाँ भी घूँघट डाले लंबे बाँस लिए एक तरफ और बचाव के लिए छोटे-छोटे डंडे लिए पुरूष एक तरफ । जब स्त्रियाँ इन

पुरूषों पर लाठियों का वार करें तब वे इन डंडों से अपनी रक्षा कर सकें । न कर पाएँ तो चोट खाए-स्त्रियों की बला से ! कहीं-कहीं एक पुरूष ऊँचे मोटे खंबे पर गुड़ की ढेली को उतारने के लिए चढ़ता था । सिर और नीचे की देह को कपड़ों इत्यादि से ढककर । जैसे ही उसने खंबे पर चढ़ना आरंभ किया कि स्त्रियों ने हँसते-गाते लाठियों की बौछार की । ज्यादा मार पड़ी तो आ गए फिर नीचे, जहाँ के तहाँ और कुटते-पिटते, मार सहते, ऊपर पहुँच गए तो गुड़ की पारी उनकी । मार बंद गुड़ सबका ।''[177]

5.2.3.2.3 अक्षय तृतीया

'कचनार' उपन्यास में वर्मा जी ने 'अक्षय तृतीया' त्यौहार का वर्णन किया है जो इस प्रकार है –

''अक्षय तृतीया (अकती) आई । अकती का त्यौहार समृद्ध लोगों के घर दाल-चावल, बड़े-मंगोड़े, कढी-मसूरी रोटी बनी, गरीबों ने चावलों का पेय (पेज) बनाया । देवी-देवताओं की पूजा हुई । हरांयते लिए गए । महींदारों और नौकरों को हल्दी के टीके लगाकर खिलाया-पिलाया गया । खेतों में हल का एक-एक कुंड डाला गया ।

तीसरे पहर उपरांत, जब थोड़ी-थोड़ी लू चल रही थी, स्त्रियाँ चने के भीगे हुए देवल और बताशे लेकर निकल पड़ीं । एक-दूसरे को गाते-गाते बाँटे ।

लड़कियों और लड़कों ने आक के अधखिले फल तोड़े और जिनका परस्पर नाता बहिन का या इससे मिलता-जुलता न थाय, एक-दूसरे पर फेंके ।''[178]

5.2.3.3 बुन्देलखंड के अन्य आचार-व्यवहार

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में बुन्देलखंड और गोंडबाना की अन्य अनेक प्रथा-परंपराओं, रीति-रिवाजों और आचार-व्यवहारों का यथार्थ वर्णन हुआ है । 'कचनार' उपन्यास में नेग-दस्तूर, देवपूजन और मत्स्यवेध के वैवाहिक प्रसंगों का वर्णन है । 'कचनार' उपन्यास का एक उदाहरण देखें ।

''कटार की भाँवर से विवाह की राजस्थानी परंपरा राजगोंडों में प्रचलित थी । 'राव दलीप सिंह अस्वस्थ था इस कारण भाँवर उसकी कटार के साथ पड़ी थीं ।''[179]

5.2.3.3.1 मत्स्यवेध

एक और भी परंपरा का वर्णन 'कचनार' उपन्यास में देखने को मिलता है । जैसे कि 'मत्स्यवेध ।' उदाहरण निम्नलिखित है

''धातु की कुंडी में पानी भरा गया । उसमें आटे की मछली बनाकर डाली गई । छोटे से तीर-कमान दलीप सिंह और उसकी दुलहिन के हाथों में दिए गए । मछली एक डोरे से बँधी थी । डोर एक स्त्री के हाथ में थी। वह आटे की मछली को इधर-उधर घुमा रही थी । वर-वधू उसको बेधने के लिए अपने छोटे-छोटे तीर छोड़ने लगे ।''[180]

5.2.3.4 बुन्देलखंड की भाषा

बुन्देलखंडीय जीवन के और भी अनेक चित्र वर्माजी ने अपने उपन्यासों में गुंथ दिये हैं । अब मैं उनकी बुन्देलखंडीय भाषा पर प्रकाश डालूंगी । यहाँ में वर्मा जी की उपन्यासों वाली भाषा की विवेचना न कर उन पात्रों की भाषा के सौन्दर्य को प्रदर्शित करना चाहती हूँ जो ठेठ बुन्देलखंडी में ही बोलते हैं । वर्मा जी के उपन्यासों में बुन्देलखंडीय भाषा का सौन्दर्य पूरी गति से उभरा है । इसके अतिरिक्त वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में सकारना, कदाज, अनखाये, डिंडकार, निहोरा, डाँग, हाँका, रौरा, अधर, चेंवरी, रावली, गेंवड़े, करमीले, चौरा, डाँग-डूँगर, सकेलना-बगोड़ना, छाछर, रोना-किलपना, बकफंटना (बोल निकलना) आदि कई बुन्देलखण्डी शब्दों का प्रयोग किया है । इस भाषा का माधुर्य और सरसता हमें वर्मा के उपन्यास 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' में रानी लक्ष्मीबाई और झलकारी दुलैया के बीच हुए वार्तालाप में देखने को मिलती है । जैसे –

''झलकारी रानी से कुछ कहना चाहती हैं - रानी पूछती हैं तब उत्तर देती है - 'मोय जा बिनती करने-मोय माफी मिल जाय तो कुओ ।'

रानी आश्वासन देती है, झलकारी कहती है - 'महाराज, मोरे घर में पुरिया पूरवै को और कपड़ा बुनबै को काम होत आओ है । पै उनने अब कम कर दओ है । मलखम्ब, कुश्ती और जाने का का करन लगे । अब सरकार घर कैसे चलै'

रानी उससे पूछती है कि उसकी जाति में और कितने लोग कुश्ती आदि लड़ते हैं । झलकारी अपनी बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें घुमाकर उत्तर देती है - 'काए में का घर घर देखत फिरत ?"[181]

झलकारी की बातें इतनी मधुर होती है कि उन्हें बार-बार सुनने को जी चाहता है । इस बोली में झलकारी का व्यक्तित्व निखर उठा है ।

बुन्देलखंडीय बोली में भी अपनी निज की विशेषता है । उसकी मधुरता अपूर्व है विशेषकर जब वह उपन्यासों में ग्रामीण भोले भाले पात्रों के मुख से निसृत होती है । यह बात भी नहीं कि बुन्देलखंडीय बोली में केवल कोमलता और मधुरता ही हो, उसमें तीब्रता, गति और अटूट शक्ति भी है । कठिन से कठिन और हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने में भी उसकी क्षमता अपूर्व है । झलकारी के दो बोल जनता में अंग्रेजों के प्रति जो रोष भरा था उसे व्यक्त कर देते । उदाहरण देखें – झलकारी के इन दो बोलों में –

''छाती बर जाय इन अंगरेजन की, गुटक लई झांसी ।''[182]

इससे प्रकट है कि बुन्देलखंडीय भाषा कितनी समृद्ध और कितनी शक्ति सम्पन्न है ।

'कुण्डलीचक्र' उपन्यास में कहीं कहीं पूना की भाषा में भी बुन्देलखंडी मधुरता छलक उठी है –

''इतने में एक छोटी लड़की ने अँधेरे में ही

खड़े-खड़े भुजबल से पूछा -

'जी जाजू पों - पों नई बजिऐ का'

भुजबल ने उत्तर दिया - 'नई बजिहै,

टूट गयो वौ तो ।'

लड़की बोली – हूँ ऊँ – रासधारी तो बैठे है अबे ।''[183]

''विराटा की पद्मिनी'' उपन्यास में बुन्देलखंडी भाषा का प्रयोग वर्मा जी ने राजकुमार कुन्जरसिंह और अहीर पुत्र के मध्य हुए वार्तालाप में करवाया है । इनकी इस बातचीत में अपूर्व मधुरता आ गई है और स्थानीय रंग निखर उठा है –

लड़का बड़े मधुर भाव से पूछता है - ''दाऊ जू, अबै दर्शन नई भए का ?'' कुंजर पूछता है – "किसके दर्शन भाई ?" लड़का उत्तर देता है - 'एल्लौ ! हमई तो टिटकारी करन आए ! दर्शन खो नई आए, इतै तो काय के लाने आए इत्ती दूर से ? संसार भर के राजाराव नित्त आउत रहत ।''

कूंजर पूछता है – "अच्छा बतलाओ हम किसके दर्शन के लिये आए हैं ?"

लड़का - 'जी के दर्शन खों हमाओ दद्दा कमऊँ कमऊं जात । का जो दाउजु, हमने जान लई कै नई । हमखों कौन काऊ ने बताई है हम तो जान गए ।।'

कुंजर कहता है - 'तुम्हारे साथ चलेंगे कब चलोगे'

लड़के ने उत्तर दिया - 'जब चाए तब ! कौन दूर है ? इतैं सें दो कोस तो हैई । हमई एक भैंस के दूध नई निकरत सो बिनती के लानें कालई परौं जैऐं । तुम जो कुछ मांगौ, सौ तुम्हें सौऊं मिलि जैहें ।''[184]

'गढ़-कुण्डार' में भी अर्जुन की भाषा का यही स्वरूप आदि से अन्त तक हमें देखने को मिलता है । इसी बुन्देलखंडी बोली ने वर्माजी के उपन्यासों को बुन्देलखंड की अतुलनीय निधि बना दिया है । बुन्देलखंडी वातावरण की स्वाभाविकता इसके कारण और भी विगुणित हो उठी है । स्थानीयता की यह सत्ता वर्मा जी के उपन्यासों की प्राण है । इसी कारण उन्हें बुन्देलखण्डी उपन्यासकार कहा गया है ।

5.2.3.5 बुन्देलखंड के गीत-लोकगीत

वर्मा जी के उपन्यासों में बुन्देलखंड के गीत-लोकगीत के स्वर भी सुन पड़ते हैं । गीत तो यहाँ की आत्मा है । चक्की चलाते हुए तो हर जगह औरतें गाती हैं, पर यहाँ तो पानी भरते जाते समय, पानी भरते समय, यात्रा में सभी स्थानों पर गीत गाती है । 'विराटा की पद्मिनी' में लोकगीतों के कुछ अंश आए हैं – उदाहरण देखें –

'वह (नरपति) प्रमत्त होकर गाने और ताली बजाने लगा -

''मजिनिया, फुलवा ल्याओ नंदन-वन के

ऊँची-नीची घटिया डगर पहार,

जहाँ वीरा लँगुरा लगाई फुलवार ।

मलिनिया, फुलवा ल्याओ नंदन-वन के ।

बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास,

उड़ गए फुलवा, रह गई बास ।

मलिनिया, फुलवा ल्याओ नंदन-वन के ।''[185]

इसी प्रकार वर्माजी का सामाजिक 'उपन्यास 'आहत' का भी उदाहरण देखिये, जहाँ मंजरी ने अन्य कन्याओं के साथ मिलकर कार्तिक मास में ये लोकगीत गाया –

"भई न बिरज की मोर,

सखीरी मैं तो भई न बिरज की मोर ।

नचकै मोर कदम पै बैठत हेरत (देखत) चारों ओर

सखीरी मैं तो.....

उड़-उड़ पंख गिरै धरती पै बीनत बन्द किसोर ।

सखीरी मैं तो....

उन पंखन कौ मुकुट बनाकें पहनत जुगल किसोर ।

सखीरी मैं तो...."[186]

5.2.3.6 बुन्देलखंड के लोक नृत्य

गीत लोकगीत के अतिरिक्त वर्माजी के उपन्यासों में लोकनृत्य को भी बहुत स्थान दिया है ।

'सगम' उपन्यास में लड़कियाँ आश्विन मास के पितृपक्ष में सुआटा की टेढ़ी-मेढ़ी आकृति दीवाल पर बनाकर, उसे टेंसू के लाल और अन्य फूलों से सजाती है । इस अवसर पर वे टेसू बनाकर टेसू नाचते हैं और गली, बाजार इस गीत से गूँज उठते हैं ।

लोकनृत्यों में 'महारानी दुर्गावती' उपन्यास में गोंडी, करमा, सैला और गडों नृत्य का भी उल्लेख हुआ है – उदाहरण देखिये –

''पहले गोंडों ने देवी माता का एक गीत सारंगी और ढोल के साथ गाया, फिर गीत के साथ करमा, नृत्य हुआ ।.... सैला और गोंडी नृत्य भी हुए ।''[188]

'महारानी दुर्गावती' का एक और उदाहरण देखें –

"लंबे बासों के पिछले भाग में खड़ाऊँ कुठी थीं । उनपर गोंड युवक सधे खड़े हुए, ऐसे सधे हुए जैसे धरती पर पैर सजाए खड़े हों ! पैरों में घुँघरूँ बाँधे, कमर में धोती कसे, पीठ पर शैर और तेंदुओं की खाल ढाटे हुए छाती पर आकर गढ़ी हुई थी । सींगा बाजा ढोल-ताल दे रहा था और बड़ी दक्षता और आकर्षक

सुंदरता के साथ नाचने रहे । सिर पर मोर, नीलकंठ इत्यादि पक्षियों के रंग-बिरंगे पंख बांधे थे । वे फहरा-फहरा जाते थे । स्त्रियों के शरीर पर चाँदी, मूँगे और कौड़ियों के गहने लहरा रहे थे, इसके उपरांत गोंड नर-नारियों का करमा नृत्य हुआ ।"[189]

5.2.4 राष्ट्र

जैसा कि पूर्व पृष्ठों में वर्णित है लेखक को अपने देश से विशेष अनुराग था, पर उनकी दृष्टि वहीं तक सीमित न रहकर उदार राष्ट्रवाद की ओर बढ़ी । वर्मा जी के लिए राष्ट्र सर्वोपरी था । राष्ट्र-द्रोहियों से उन्हें बड़ी घृणा थी । बचपन में राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा उनको अपनी परदादी से प्राप्त हुई । अपने दादा आनन्द राव द्वारा देश पर बलिदान हो जाने का उन्हें बड़ा गर्व था । इनके देशभक्त पिता को भी जेल जाना पड़ा । मार्सडन के भारत-विरोधी इतिहास-लेखन ने वर्माजी के मन में गहरी प्रतिक्रिया जगाई । इसी कारण भारतीय इतिहास के सच्चे स्वरूप को जनता के सामने प्रस्तुत करने के लिए वे कटिबद्ध हो गए । राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत वर्माजी चन्द्रशेखर आजाद के पास सहायता पहुँचाया करते थे । वे स्वयं लिखते हैं कि जब "झाँसी में सरकार ने आन्दोलनकारियों की धड़ाधड़ पकड़ा - धकड़ी की, तब ढाई हजार रूपये का संग्रह और राजनीतिक पीड़ितों के परिवारों की सहायता के लिए उस संग्रह में से वितवरण मेरे ही द्वारा हुआ था ।"[190] उनके विचार में सरकार किसी भी दल

की हो, उसे राज्य के गौरव और उन्नति के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए । यह भावना उनके उपन्यासों का मूल आधार है ।

उन्होंने 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' नामक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करके रानी की राष्ट्रीय भावना का चित्रण मार्मिक ढंग से किया है । उसके साथ ही उग्र क्रांतिकारियों के असाधारण साहसपूर्ण आत्मबलिदानों ने सोई जाति में जागरण की स्फूर्ति और स्वत्व प्राप्ति की लालसा उत्पन्न की । पराधीन देश के भीतर आत्मगौरव की भावना, सांस्कृतिक आदर्शों के प्रति निष्ठा, आस्था तथा श्रद्धा उत्पन्न होती है । इससे अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम पैदा होता है और उसकी सर्वतोमुखी उन्नति के लिए प्रयास किया जाता है । इस दिशा में श्री वर्माजी का साहित्यिक प्रयास प्रशंसनीय रहा है । अतः वर्माजी के राष्ट्र प्रेम विचार करने से पूर्व राष्ट्र और राष्ट्रीयता के व्यापक अर्थ को समझना समीचीन होगा ।

5.2.4.1 राष्ट्रीयता का स्वरूप

मनुष्य का अपने देश की उन्नति के लिए सतत प्रयत्न करना और उसकी रक्षा के लिए अपना तन-मन-धन को अर्पित करना राष्ट्रीयता कहलाता है । राष्ट्रीयता का अर्थ बहुत व्यापक है । उसे समझने के लिए पहले उसके स्वरूप एवं तत्वों पर विचार करना आवश्यक है ।

'राष्ट्र' अंग्रेजी शब्द 'नेशन' का हिन्दी पर्याय है । 'मानस हिन्दी कोश के अनुसार' "किसी निश्चित और विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले लोग जिनकी एक

भाषा, एक से रीति-रिवाज तथा एक सी विचारधारा होती है, एक राष्ट्र के अन्तर्गत आते हैं ।''[191]

डॉ. जे.एम.मेकेंजी ने राष्ट्र का संबंध समूह से माना है । उनके अनुसार "राष्ट्र लोगों का समूह है जिसमें लोग आवश्यक रूप से नहीं, फिर भी एक देश के रूप में निवास करते हैं, और साधारण कानून तथा परंपराओं के द्वारा एक-दूसरे से बँधे रहते हैं ।"[192]

जब व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को छोड़कर समष्टिगत कार्यों में लग जाता है, तब राष्ट्रीयता का जन्म होता है । राष्ट्र के निर्माण में राष्ट्रीय इतिहास, सामूहिक गौरव और अपमान, सुख और दुःख, भविष्य की आशाएँ, आकांक्षाएँ आदि महत्वपूर्ण होते हैं । आदर्श राष्ट्र वही है जिसके लोग सामूहिक भलाई और उन्नति को व्यक्तिगत अथवा परिवार या जाति की भलाई व उन्नति से भी सर्वोपरि मानते हैं । वे आपस में अपनेपन का भाव रखने और सुख-दुःख को समान रूप से बाँट लेते हैं । राष्ट्र के मनुष्य में भाषा, धर्म, जाति, सभ्यता आदि की एकता के साथ-साथ भाव या दिल की एकता भी बहुत प्रमुख है ।

राष्ट्रीयता के सदुपयोग की अत्यंत आवश्यकता है । एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझे, दूसरे के हित में बाधा न डालें उसके ज्ञान, अनुभव और शक्ति से उचित लाभ उठावे, यह आवश्यक है । राष्ट्रों के बीच का व्यवहार भी पारस्परिक सहकारिता और सहयोग पर आधारित हो । इस

तरह एक सुदृढ़ राष्ट्र के लिए कुछ मुख्य तत्वों का होना आवश्यक है और वे इस प्रकार हैं - एक भूखंड का होना, एक शासन का होना, एक ध्वज का होना, अनेकता में एकता की भावना, एक राष्ट्रीयता का होना आदि ।

स्वाधीनता राष्ट्रीयता का प्रबल अंग है । पराधीनता की बेड़ियों से निकलकर मानसिक एवं वैचारिक स्वतंत्रता प्राप्त करना लोग चाहते रहेंगे । स्वाधीनता पराधीन देशों में जागरण का कारण बनती है । इस अवस्था में स्वाधीनता की भावना 'राष्ट्रीयता' के ही अन्तर्गत आती है ।

5.2.4.2 राष्ट्रीयता की परिभाषा

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेई ने राष्ट्रीयता की परिभाषा इस प्रकार की है -

"राष्ट्रीयता से मेरा मतलब स्वदेश प्रेम की व्यापक भावना से है ।"[193]

राष्ट्रीयता में संकीर्णता सांप्रदायिकता आदि संकुचित भावनाएँ नहीं होती । राष्ट्रीयता अपने स्वरूप में व्यापक होती है । वहाँ व्यक्तिगत भावनाओं की अपेक्षा नहीं की जाती है । क्योंकि व्यक्ति ही राष्ट्र का मूल अंग है । देश या राष्ट्र की प्रगति में व्यक्ति की प्रगति भी सम्मिलित है। व्यक्ति ही समष्टि का आधार है । वह समष्टि की समृद्धि के लिए अपने सुख का त्याग करता है और कष्ट सहने की शक्ति उसमें आ जाती है ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में -

"प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अंश है और इस राष्ट्र की सेवा के लिए इसको धन-धान्य से समृद्ध बनाने के लिए इसके प्रत्येक नागरिक को सुखी और संपन्न बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सब प्रकार के त्याग और कष्ट स्वीकार करना चाहिए ।"[194]

5.2.4.3 राष्ट्रीय भावना की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

राष्ट्रीय भावना की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैः

1. जाति, धर्म और संप्रदाय के प्रति विरोध
2. सत्यागृह आन्दोलन की अभिव्यक्ति
3. राज्य तथा राष्ट्र के प्रति किया गया त्याग
4. रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का विरोध
5. देश प्रेम की भावना

5.2.4.3.1 जाति, धर्म और संप्रदाय के प्रति विरोध

जाति राष्ट्रीयता का पोषक अंग नहीं है । जाति, धर्म या संप्रदाय के कारण राष्ट्रीयता खंडित होती है । प्राचीन काल से ही हमारे देश में जाति-पाँति का भेदभाव रहा है । भारतीय नागरिक जाति-भेद करके परस्पर द्वेष बढ़ाते थे । भारतीय राष्ट्रीय जागरण में धर्म, जाति इत्यादि के भेदभाव ही बाधक रहे । इन्हीं के कारण राष्ट्र एकता को खो बैठा और विदेशी सत्ता के अधीन रहने को बाध्य हुआ । वर्मा जी ने इस जातिगत भेदभाव को भारतीय इतिहास की कसौटी पर परखा है । यह भेदभाव वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर उगा और

फला फूला है । भेदभाव इतना बढ़ा कि विदेशी लोग भारत में आये और परस्पर झगड़ते हुए भारतीयों पर चढ़ बैठे । यह जाति-जनित संकीर्णता वर्माजी को चुभी है । उन्होंने परस्पर भेदभाव का उन्मूलन करने का प्रयास अपने उपन्यासों द्वारा किया है । 'रामगढ़ की रानी अवन्तीबाई' में राष्ट्र एवं धर्म के लिए प्राण देने की अपूर्ण क्षमता है । अवन्तीबाई के लिए अपना धर्म प्रिय है और वह अन्य धर्मों का आदर करती है । उनकी धर्म प्रियता का एक उदाहरण उद्धृत है - इस्ट इण्डिया कम्पनी के सरदार भारतीय धर्म को दबाकर उसके स्थान पर इसाई धर्म का प्रचार करना चाहते हैं और लोगों पर धर्म बदलने का दबाव डालते हैं । रानी अवन्तीबाई से यह सहन नहीं होता । वह अपने धर्म के लिए मर-मिटने वाली है । वह कहती है - "अन्याय के प्रति जीवन पर्यन्त लड़ूँगी । सिर दे दिया जाएगा, परंतु धर्म नहीं दिया जाएगा ।.... जब तक हमारे तन में रक्त की एक भी बूंद है तब तक कोई हमारा धर्म नष्ट नहीं कर सकेगा ।"[195]

'महारानी दुर्गावती' उपन्यास में दुर्गावती धर्मप्रिय और न्यायप्रिय है । दूसरों की रक्षा करना वह अपना धर्म मानती है । उसमें ममता और मानवीयता सुंदर समन्वय है। उसके मन में अपने राज्य के प्रति अगाध प्रेम है । उसमें अन्य राज्यों के प्रति आदर भी है । जब दूसरे राज्य वाले अपने राज्य पर आक्रमण करते हैं, तब वह उनका सामना करती है । उसके राज्य पर आक्रमण करने वाले बाजबहादुर सुलतान को उसने कई बार हरा दिया है । दिल्ली का बादशाह अकबर दुर्गावती को धमकी देता महन्त गोपानन्द के द्वारा एक

फरमान भेजता है । उसे पढ़कर महारानी दुर्गावती आग बबूला हो उठती है और साहस के साथ कहती है -

"हमने अकबर के या किसी के राज्य पर कभी कोई चढ़ाई नहीं की । इस पर भी वह हमारे क्षेत्र को रौंदने की धमकी देता है ! हम अपने धर्म और देश की रक्षा में अपना सब कुछ स्वाहा कर देंगे, परंतु ऐसे दुष्ट के सामने एक दीन से दीन गोंड भी सिर नहीं नवायेगा ।"[196]

'मुसाहिबजू' वर्माजी का नायक प्रधान उपन्यास है । केरुआ के जागीरदार दलीपसिंह मुसाहिबजू उदारमना और राष्ट्रीय भावना से युक्त थे, जिनके पास बारह सौ योद्धा थे । वे स्वयं वीर योद्धा थे । वे कर्तव्य को राष्ट्रहित को प्रमुख स्वीकार करते हैं । वर्माजी ने इस उपन्यास में जाति-पाँति और छुआछूत के दम्भ के बारे में बताया है। मुसाहिबजू जहाँ अपने सैनिकों को नीची जाति के होने पर भी गले लगाते हैं, भरपूर प्यार देते हैं । छुआछूत के दम्भ को वह नहीं मानते थे । इसलिए उनके सैनिकों तथा अनुयायियों में छुआछूत का भेदभाव नहीं था । इसी का परिणाम है कि पूरन आदि मेहतरों को भी गले लगाने में वह नहीं हिचकते । 'मुसाहिबजू' उपन्यास के 35 नंबर पृष्ठ पर देखें -

"मुसाहिबजू का नियम था कि जब कभी सैनिक उनके घर पर आ जाते, वह उनको भोजन कराते ।"[197]

लेखक ने मुसाहिबजू के चरित्र-समाज के सामने प्रस्तुत करके छुआछूत, जाति-पाँति का भेदभाव आदि समाज से हटाने का प्रयास किया है ।

5.2.4.3.2 सत्याग्रह आन्दोलन की अभिव्यक्ति

अंग्रेज शासक लोग छल-बल से भारतीय जनता को दबाये रखने में लगे हुए थे । आर्थिक रूप से भारत का शोषण एवं भारत की शिक्षा, संस्कृति आदि का ध्वंस करने के द्वारा वे अपने शासन की नींव को सुदृढ़ बनाते जा रहे थे । जनता में निराशा, निर्बलता आदि नाशक तत्व बढ़ते जा रहे थे । वे अपनी पराधीनता को दूर करने के लिए हिंसा और क्रांति का उपाय सोचने लगे । लेकिन उन दोनों का खण्डन करके अहिंसा, सत्याग्रह और सुधार का समर्थन महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती आदिने किया । 'अचल मेरा कोई' उपन्यास में गाँधीजी द्वारा चलाए जा रहे सत्याग्रह आन्दोलन को लेकर युवक एवं युवतियों में फैले जोश का वर्णन किया है । युवकजेल जाने से भी नहीं डरते बल्कि स्वतंत्रता आन्दोलन के कारण जेल जाने को वे गर्व की बात मानते हैं । उदाहरण देखें - अचल का अन्तर्मन कह रहा था -

"उसको जेल से घृणा नहीं थी । उसको यातनाओं से स्नेह नहीं था, परंतु यातनाओं के सामने उसने जो अदम्यता अनुभव की थी और जो शूरता प्रगट की थी उसका स्मरण उमंगे भर देता था ।"[198]

5.2.4.3.3 राज्य तथा राष्ट्र के प्रति किया गया त्याग

समाज के उपरान्त राज्य और राज्य के उपरान्त राष्ट्र दोनों के ही प्रति किया गया त्याग उच्चस्तरीय भाव-भूमि पर आधारित है । इसमें जाति या धर्म आड़े नहीं आता । 'गढ़ कुण्डार' उपन्यास का इब्नकरीम 'भरतपुरा गढ़ी के

अधिपति हरी चन्देल आदि के त्याग राज्य के लिए किए गए त्याग के अन्तर्गत आते हैं हरी चन्देल बुन्देला राजकुमार सहजेन्द्र से, खन्गारों की ओर से लड़ता हुआ,कहता है कि - "यह मत भूलो कि मैं खन्गार सेवक हूँ ।" हब्नकरीम खन्गारों की ओर से लड़ता हुआ, अग्निदत्त की तलवार के वार से राजकुमार नागदेव की रक्षा करता हुआ कहता है कि "आज खन्गारों के नमक से बेबाक हो जाऊँ । कौन बुन्देला सामने आता है आवे ।"[199]

मराठा साम्राज्य की रक्षा के लिए मुगल सेना का सामना करने वाले राजाराम (शिवाजी के पुत्र) और यशुबाई का त्याग तथा अकबर की सेनाओं का जमकर सामना करते हुए बलिदान होने वाली, रानी दुर्गावती का त्याग भी इसी प्रकार का है । ये तीनों ही राज्य की सुरक्षा के लिए त्याग की ओर अग्रसर होते हैं।

राज्य के उपरान्त त्याग का विस्तार राष्ट्र के लिए होता है । माधवजी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और रामगढ़ की रानी अवन्तीबाई के त्याग, राष्ट्रीय भावना से प्रेरित हैं । जगत सिंह सूबेदार बल्देव तिवारी, शंकर शाह, रघुनाथ शाह, वालयुवा सरयूप्रसाद सिंह, कर्णदेव, सुंदर, मुंदर, काशी, झलकारी, तात्या टोपे, रघुनाथ सिंह, जवाहर सिंह आदि सभी राष्ट्र के खातिर ही अपनी प्राणों तक की आहुतियाँदे देते हैं । राष्ट्र की स्वतंत्रता के महत्व उद्देश्य के प्रयत्न में बड़े से बड़ी बाधा उन्हें विचलित नहीं कर पाती । 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई'

उपन्यास में रानी लक्ष्मीबाई अपने देश की स्वतंत्रता का स्वप्न देखते हुए कहती है-

"…. भगवान की दया से, शंकर के प्रताप से मैं बतलाऊँगी कि अभी भारत में कितनी लौ शेष है । और यदि मैं इस प्रयत्न में मर गई तो क्या होगा । कोई दूसरा तपस्वी मुझसे अच्छा खड़ा हो जायेगा और इस भूमि का उद्धार करेगा । तपस्या का क्रम कभी खण्डित नहीं होगा ।"[200]

'मुसाहिबजू' में मुसाहिब दलीपसिंह राजा के आदेशानुसार देश से बाहर चल देता है वह किसी के मनाने से नहीं लौटता । जब राजा उसको देश के संकट की बात कहता है तो तुरन्त लौट आता है । "माधवजी सिन्धिया"में माधव अन्त तक राष्ट्रीय गौरव के लिए जूझते रहे । एक स्थान पर वे कहते हैं - "मैंने एक आदर्श पाल रखा है । मैं भारत भर की शक्तियों का एकीकरण और सामन्जस्य कर ऐसे संघ की स्थापना करना चाहता हूँ जिससे भारतीय संस्कृति की रक्षा हो जाए, उसका विकास हो और निरन्तर बढ़े । अहमदशाह जैसे विदेशियों से, जो रक्तपात और भयंकर उत्पात मचा चुके हैं और अंग्रेज सरीखे परदेशियों से, जो आगे चलकर हमको दाब सकते हैं । इस देश को बचाना चाहता हूँ ।"[201]

स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीयता के लिए अपना सब कुछ लुटा देनेवाले वीरों को वर्माजी के कई ऐतिहासिक उपन्यासों में स्वाधीनता को मुख्य उद्देश्य बनाया

गया है । पात्रों को अपने देश की स्वतंत्रता और उनकी अस्मिता पर हँसते-हँसते अपनी जान की बाजी लगाने वाला दर्शाया है ।

5.2.4.3.4 रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का विरोध

हमारा समाज धार्मिक अंधविश्वास, रूढ़िग्रस्त धारणा, जाति-परिवर्तन आदि अनेक समस्याओं में उलझा है । इससे समाज को अत्यंत क्षति पहुँच रही है जब तक हम परिवेश की स्थिति, परिवर्तन की आवश्यकता और प्रगति से अवगत न होंगे, तब तक हम अपने अहम् में विश्रृंखलित रहेंगे और इससे हमारी उन्नति कठिन है । उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा ने युगानुरूप सामयिक स्थिति को मार्मिकता से ग्रहणकिया है । और अपने अनेक उपन्यासों के द्वारा उन्होंने रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों का विरोध किया है तथा नवीन प्रतिमानों के अनुरूप समस्याओं का निदान भी किया है ।

वर्मा जी का सामाजिक उपन्यास 'प्रत्यागत' की रचना जिस युग में हुई, वह गाँधीवादी युग था जबकि सामाजिक रूढ़ि का परिस्कार अनावश्यक प्रतीत हुआ। हिन्दू समाज अंधानुकरण और कट्टरपन के लिए अपनी सहानुभूति को सीमित कर भ्रष्ट हुए बाँधवों को अपनाना नहीं चाहता था । यदि कोई पुनः हिन्दू बनना चाहता, तो सनातन हिन्दू धर्म उसे अन्यमनस्कता से अपने धर्म में मिलने देता और उसके बाद उपेक्षा भाव से व्यक्ति का निरादर करता है । इसके परिणाम स्वरूप हिन्दू दूसरा धर्म स्वीकार करने लगे । इस उपन्यास के एक मात्र नवल बिहारी ऐसे व्यक्ति है, जो समाज की प्रगति में उलझन ही

उत्पन्न करते हैं । ऐसे ही पात्र कूप-मंडूकता की सृष्टि करते हैं । ऐसे व्यक्ति हमारे समाज में देखे जाते हैं, जो रूढ़िग्रस्त धारणा के फलस्वरूप समाज को अगति कि ओर उन्मुख करना चाहते हैं। नवल बिहारी का स्पष्ट विचार - ''जैसे नकटे, लूले और लंगड़े के अंग चले जाने पर फिर वापस नहीं आते ठीक वैसे ही छोड़ी हुई जाति फिर कैसे मिल सकती है ।''[202]

उसका विश्वास था - ''यह तो कलयुग का प्रभाव ही है । उत्तरोत्तर नाश की ओर संसार बढ़ा चला जा रहा है । कर्म की गति कलियुग के अन्त में प्रलय होने पर जब फिर सृष्टि की रचना की होगी, तब सब में फिर वर्णाश्रम का आविर्भाव होगा । पुनः वही सत युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का चक्र चलेगा । इसीलिए तो मेरी ध्रुवधारणा यह है कि चाहे अन्त में एक ही हिन्दू क्यों न बने, परंतु हो वह नितांत पवित्र और शुद्ध ।''[203]

इस उपन्यास में वर्माजी ने नवल बिहारी जैसे कट्टरपंथी पुरूषों का विरोध किया है । उनका मंतव्य है कि नवल बिहारी जैसे कट्टरपंथी धर्म की ओट में स्वार्थ-सिद्धि करने वाले पुरूषों का सशक्त विरोध न किया गया, तो हमारा कल्याण संभव नहीं ।

'अमरबेल' उपन्यास में वर्माजी प्राचीन रूढ़ियों, वर्ग-संघर्ष और प्राचीन ढकोसलों को समाज से निष्कासन करने की बात बताते हैं । जमींदारी प्रथा उन्मूलन होते देख जब ग्रामीणों के मध्य मूक स्वास की लहर दौड़ पड़ी तो जमींदार और अन्य व्यक्ति, जो अपने वैयक्तिक महत्व को बढ़ाने के इच्छुक

थे, भिन्न-भिन्न क्रियाओं द्वारा कार्यक्षेत्र में तत्पर हो गये । जमींदार देशराज ग्राम में अपनी सांस्कृतिक वृत्ति के अनुरूप किसानों से ब्याज सहित अन्न लेता है, उस पर अत्याचार भी करता है ।

'टहल', वर्ग संघर्ष और साम्यवादी धारा का पोषक है । वह देशराज से क्षुब्ध रहता है, अप्रसन्न हो व्यंग्य बाण चलाता रहता है । उसका कहना है - ''मैं अराजक नहीं समूहवादी हूँ, रूढ़ियों का संहार और वर्ग संघर्ष में विश्वास करने वाला पुनरुत्थानवादियों का घोर विरोधी हूँ ।''[204]

क्योंकि उनका विश्वास है - ''नया जीवन, नयी लहर, प्रगति, नया संवेग इस प्राचीन की श्रद्धा और पूजा के ढकोसलों की जकड़ में ही तो रूँध-रूँध जा रहे हैं ।''[205]

'अचल मेरा कोई' उपन्यास की नायिका कुन्ती प्रगतिशील विचार की शिक्षिता नारी है । नारी स्वतंत्रता और समान अधिकार-प्राप्ति की समर्थिका है । सीमाहीन स्वतंत्रता का उपभोग उसके जीवन का अभिशाप बन जाता है । वह पढ़ते समय राष्ट्रीय स्वतंत्र-चेतना से आन्दोलित छात्रा है । कुन्ती अपने साथी सुधाकर और अचल राजनैतिक अभियुक्तों की मुक्ति के समय उनका अभिनन्दन और स्वागत के लिए जाती है । कुन्ती में वीरतापूर्ण नारीत्व का परिचय मिलता है जैसे थानेदार के सम्मुख बंधे हुए ग्रामीण स्त्रियों और पुरुषों को खोल देना और उसके सम्मुख निर्भिक हो, उनके बीच खड़ी हो जाना उस

समय अचल स्पष्ट कहता है - "आज जो रूप मैंने तुम्हारा देखा वह है नारी का वास्तविक सौन्दर्य । जो अक्षय है, अमिट है ।"[206]

वह राजनीति में न पड़कर यथासंभव ग्रामीण लोगों की सहायता कर अपनी उदारता का भी परिचय देता है । नारी स्वतंत्रता की समस्या के साथ-साथ लेखक विधवा निशा की शादी अचल से कराकर प्राचीन रूढ़ियों को समाज से दूर करना चाहते हैं ।

5.2.4.3.5 देश प्रेम की भावना

राष्ट्रीयता के अन्तर्गत राष्ट्र के प्रति सच्ची भावना का संचार ही साहित्यकार का धर्म है । वर्मा जी की राष्ट्रीय भावना उनके प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यास में मुखर है । वर्मा जी ने राष्ट्रीय एकता, स्वदेश प्रेम, वीर-प्रशस्ति, स्वदेश-प्रचार, स्वातंत्र्य, अतीत-चिंतन, राष्ट्रस्तवन तथा राष्ट्रीय चेतना इत्यादि उदात्त भावनाओं का संचार किया है । 'माधव जी सिंधिया' में माधवजी का चित्रण एक राष्ट्रपुरुष का चरित्र है । इसी प्रकार रानी लक्ष्मीबाई, रानी दुर्गावती, रानी अहिल्याबाई और रानी अवंतीबाई इत्यादि का चरित्र राष्ट्रीय भावनाओं से आप्यायित है । जब राष्ट्र पराधीन हो, विदेशी शासन से जन-मन संत्रस्त हो, सर्वत्र शोषण, अत्याचार-अनाचार हो, वैसी स्थिति में इन्हें चैन कहा ? राष्ट्रीयता से अनुप्राणित पात्र राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने में अहर्निश जागरूक बने रहते हैं । वे स्वतंत्रता का अलख जगाते हैं, सैन्य-संगठन करते हैं और जन-जन के मन में स्वतंत्रता का बीजवपन करते हैं । 'झाँसी की रानी' और 'रामगढ़ की

रानी' में केवल रानी लक्ष्मीबाई और रानी अवंतीबाई ही नहीं, वरन् तात्या टोपे तथा राजा शंकर शाह आदि चरित्रों में सबसे गौरवशाली पक्ष यही है कि उन्होंने अपने साथ समस्त देशवासियों को जाग्रत् किया और क्रांति के स्फुलिंग को भीषण ज्वाला में परिणत कर दिया । जब देश पर क्रूर उच्छृंखल विदेशी शासनतंत्र का दमनचक्र चल रहा था, चारों ओर अनीति-अनय का आतंक छाया हुआ था तो उस सामंतीय दुर्व्यवस्था काल में रानी लक्ष्मीबाई और रानी अवंतीबाई ने जन-जन को जाग्रत करना ही अपना परम धर्म समझा । सर्वप्रथम उन्होंने ही जनता की शक्ति पहचानी थी । रानी लक्ष्मीबाई कहती है -

"जनता हमारे साथ है । जनता सबकुछ है । जनता अमर है । इसको स्वराज्य के सूत्र में बाँधना चाहिए । राजाओं को अँगरेज भले ही मिटा दें परंतु जनता को नहीं मिटा सकते । एक दिन आवेगा जब इसी जनता के आगे होकर मैं स्वराज्य की पताका फहराऊँगी ।"[207]

रानी लक्ष्मीबाई की राष्ट्रीय भावना का एक और उदाहरण देखिये जब अंग्रेज उनकी गोद को अस्वीकार कर, झाँसी को अपने आधिपत्य में लेने को करते हैं, तब वह आवेश में आकर एलिस के सम्मुख कल उठती है - "मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी ।"[208]

इस प्रकार के विचार अनेक स्थलों पर व्यक्त हैं ।

महारानी दुर्गावती की भावना भी इसी प्रकार की है । वे देश की खंडित शक्ति पर चिंता व्यक्त करती है -

"देश इन इकाइयों में विभक्त है, उद्देश्य की पूर्ति के लिए एकत्र होकर लड़ना भूल गए ये लोग । अपनी अपनी पड़ रही है । इन्हें छूट मिल जाए तो संपत्ति-विस्तार के लालच में परस्पर लड़े हार गए तो वैरी के सामने सिर झुकाकर अवनत हो गए । इस प्रवृत्ति में हेर-फेर किस युग में होगा, कहा नहीं जा सकता ।"[209]

"विराटा की 'पद्मिनी' का नायक राजा राजसिंह देश के सामने अपनी वाग्दत्ता गोमती की परवाह नहीं करता और कुमुद के पिता से स्पष्ट कह देता है कि यह समय भोग विलास का नहीं, देश पर उत्सर्ग होने का है । "जब अवकाश का समय आवेगा, तब बातों की ओर ध्यान दूँगा ।..... यदि उसकी (कुमुद की) इच्छा हो, तो चली आवे, कम भेज दो परंतु यह समय भांवर के लिए उपयुक्त नहीं ।"[210]

देश की विकेंद्रित स्थिति पर लेखक ने अपने प्रायः सभी उपन्यासों में चिन्ता व्यक्त की है ।

राष्ट्रीय भावोन्मेष की दृष्टि से 'माधव जी सिंधिया' का चरित्र विशेष रूप से उल्लेख है । उनका चरित्र एक राष्ट्रनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है । वे राष्ट्र को समुन्नत बनाने के लिए सुदृढ़ संकल्प, अचल धैर्य, अमित शौर्य, अटूट, उत्साह और अपूर्व आत्मत्याग को लेकर आगे बढ़ते हैं । कई स्थलों पर उनकी उक्तियों में राष्ट्रीय एकता की भावना व्यक्त हुई है । वे कहते हैं - "मैं (माधव) अपने लिए कोई राज्य स्थापित नहीं करना चाहता । अपने को जनता

के सुख का साधन बनाए रखता हूँ । मेरी पूर्ण इच्छा है कि सम्पूर्ण भारतीय रियासतों का संघ बने, उनमें व्यवस्था स्थापित हो । दिल्ली का बादशाह इस संगठित संघ का मुखिया रहे पेशवा प्रधान संचालक और हमारी सेना के मन से मुल्कगीरी का लोभ-मोह निकालकर उनके मन में दूसरा हेतु बिठला दिए जाए ।''[211]

अर्थात्, इन शब्दों में वर्मा जी का अपना राष्ट्रीय दृष्टिकोण ही प्रकट होता है ।

सारतः वर्मा जी के सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय एकता के सभी परमोज्जल तत्त्वों का नियोजन हुआ है । उनके सभी आदर्श और वीरोदात्त पात्र सच्चे राष्ट्रप्रेणी है । वे राष्ट्रीय संकट को व्यक्तिगत संकट समझते हुए उनसे मुक्त होने का सत्प्रयास करते हैं और अपने व्यवहार, आचरण और अनुशासन से स्वदेश को गौरवान्वित करते हैं ।

संदर्भ सूची

1. वर्मा वृन्दावनलाल, भुवन विक्रम - पृ.67
2. प्रसाद, डॉ. ईश्वरी - प्राचीन संस्कृति कला, राजनीति धर्म तथा दर्शन, पृ.73
3. वर्मा वृन्दावनलाल - भुवन विक्रम, पृ.80
4. प्रसाद, डॉ. ईश्वरी - प्राचीन संस्कृति कला, राजनीति, धर्म तथा दर्शन, पृ.73

5. प्रसाद, डॉ. ईश्वरी - प्राचीन संस्कृति कला, राजनीति धर्म तथा दर्शन, पृ.391
6. वर्मा, वृन्दावनलाल - भुवनविक्रम, पृ.
7. वर्मा, वृन्दावनलाल - भुवनविक्रम, पृ.
8. पाठक, विशुद्धानन्द - उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ.413
9. श्रीवास्तव, डॉ. आशीर्वादीलाल - भारत का इतिहास, पृ.16
10. पाठक, डॉ. विशुद्धानन्द - उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ.408
11. वर्मा, वृन्दावनलाल - देवगढ़ की मुस्कान, पृ.39
12. श्रीवास्तव, डॉ. आशीर्वादीलाल - भारत का इतिहास, पृ.17
13. पाठक, डॉ. विशुद्धानन्द - उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ.620
14. ठाकुर, संपादक मुकेश नायक - बुन्देलखंड का परिचय, पृ.21
15. वर्मा, वृन्दावनलाल - गढ़कुंडार, परिचय, पृ.6
16. तिवारी, डॉ. गोरेलाल - बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ.122
17. वर्मा, वृन्दावनलाल - गढ़कुंडार - परिचय पृ.5
18. वर्मा, वृन्दावनलाल - गढ़कुंडार - पृ.24
19. तिवारी, डॉ. गोरेलाल - बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ.121
20. तिवारी, डॉ. गोरेलाल - बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ.121
21. शर्मा, डॉ. मथुरालाल - दिल्ली सल्तनत, पृ.136

22. द्विवेदी, श्री हरिहर निवास - ग्वालियर के तोमर भाग-2, पृ.128

23. https://bit-ly/3icL.2nf

24. https://bit-ly/3mqAT8

25. https://hindi-nativeplanet-com/gwalior/attractions/gujarai$mahal/

26. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, परिचय, पृ.3

27. सिंह, डॉ. रविभानु नाहर - तुर्क अफगान कालीन भारत, पृ.600

28. सिंह, - डॉ. रविभानु नाहर - तुर्क अफगान कालीन भारत, पृ.600

29. वर्मा, सं.डॉ.हरीशचन्द्र - मध्यकालीन भारत भाग-1, पृ.260

30. सिंह, डॉ. रविभानु नाहर - तुर्क अफगान कालीन भारत, पृ.571

31. सिंह, डॉ. रविभानु नाहर - तुर्क अफगान कालीन भारत, पृ.601-602

32. सिंहल, डॉ. शशिभूषण - उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ.98

33. अबूल फजल - अकबरनामा भाग-2, पृ.211

34. श्रीवास्तव, डॉ. आसीर्वादीलाल - अकबर महान, पृ.86

35. अबूल फजल - अकबरनामा, भाग-2, पृ.63

36. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, परिचय पृ.6

37. श्रीवास्तव, डॉ. आशीर्वादीलाल - मुगलकालीन भारत, पृ.112

38. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, परिचय पृ.6

39. श्रीवास्तव, डॉ. आशीर्वादीलाल - भारत का इतिहास, पृ.447

40. वर्मा, वृन्दावनलाल - विराटा की पद्मिनी, परिचय पृ.1

41. सिंहल, डॉ. शशिभूषण - उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ.63

42. तिवारी, डॉ. गोरेलाल बुन्देलखंडका संक्षिप्त इतिहास, पृ.201

43. पाण्डेय, उत्तर मध्यकालीन भारत, पृ.348

44. सिंहल, डॉ. शशिभूषण - उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ.65

45. वर्मा, वृन्दावनलाल - विराटा की पद्मिनी, परिचय पृ.6

46. डॉ. गोविन्द जी - हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास, पृ.269

47. तिवारी, डॉ. गोरलाल - बुन्देल खण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ.201

48. वर्मा, वृन्दावनलाल - विराटा की पद्मिनी, परिचय पृ.5, 6

49. वर्मा, वृन्दावनलाल - टूटे काँटे, परिचय पृ.1

50. सरदसाई, गोविन्द सखाराम - मराठों का नवीन इतिहास, द्वितीय खंड, पृ.183

51. वर्मा, वृन्दावनलाल - टूटे काँटे, पृ.60

52. वर्मा, वृन्दावनलाल, माधवजी सिंधिया, परिचय पृ.8,9

53. शर्मा, डॉ. कालूराम - आधुनिक भारत का राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास भाग-1, पृ.10

54. भार्गव, डॉ. वी.एस. - आधुनिक भारतीय इतिहास, पृ.20

55. वर्मा, वृन्दावनलाल - माधवजी सिंधिया, परिचय पृ.4

56. सिंह, प्रताप - आधुनिक भारत, पृ.87

57. वर्मा, वृन्दावनलाल - माधवजी सिंधिया, परिचय, पृ.7

58. सिंह प्रताप - आधुनिक भारत, पृ.75

59. वर्मा, वृन्दावनलाल - माधवजी सिंधिया, परिचय पृ.10, 11

60. वर्मा, वृन्दावनलाल - अहिल्याबाई, परिचय पृ.8

61. वर्मा, वृन्दावनलाल - अहिल्याबाई, परिचय पृ.11

62. वर्मा, वृन्दावनलाल - अहिल्याबाई, परिचय पृ.10

63. शर्मा, हीरालाल - अहिल्याबाई, पृ.19

64. वर्मा, वृन्दावनलाल - अहिल्याबाई, पृ.8

65. मोरी, डॉ. पुनम के. भारत की आदर्श नारियाँ, पृ.63

66. मोरी, डॉ. पुनम के. भारत की आदर्श नारियाँ, पृ.63

67. http://comingbharatnews.com/wp-content/uploads/2021/07/KASHI.jpg

68. http://bit.ly/kashi-mandir

69. वर्मा, वृन्दावनलाल - अहिल्याबाई, परिचय पृ.10

70. शर्मा, हीरालाल - अहिल्याबाई, परिचय पृ.52

71. वर्मा, वृन्दावनलाल - माधवजी सिंधिया, परिचय पृ.520, 521

72. वर्मा, वृन्दावनलाल - अहिल्याबाई, परिचय पृ.21

73. वर्मा, वृन्दावनलाल - अहिल्याबाई, परिचय पृ.10

74. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, परिचय पृ.2, 3

75. तिवारी, डॉ. गोरेलाल - बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ.240

76. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, परिचय पृ.

77. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, परिचय पृ.

78. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, परिचय पृ.

79. वर्मा, वृन्दावनलाल - मुसाहिबजू, परिचय पृ.1

80. वर्मा, वृन्दावनलाल - मुसाहिबजू, परिचय पृ.2

81. द्विवेदी, आर.एस. - आधुनिक भारत, परिचय पृ.11

82. वर्मा, वृन्दावनलाल - मुसाहिबजू, परिचय पृ.1

83. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, परिचय पृ.4

84. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, परिचय पृ.3

85. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, परिचय पृ.3-4

86. पारसीन - झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, परिचय पृ.8

87. पारसीन - झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, परिचय पृ.224, 225

88. वर्मा, वृन्दावनलाल - रामगढ़ की रानी, परिचय पृ.1

89. वर्मा, वृन्दावनलाल - रामगढ़ की रानी, परिचय पृ.2

90. वर्मा, वृन्दावनलाल - रामगढ़ की रानी, परिचय पृ.3

91. वर्मा, वृन्दावनलाल - रामगढ़ की रानी, परिचय पृ.4-5

92. वर्मा वृन्दावनलाल - रानी दुर्गावती, पृ.129

93. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, परिचय पृ.3

94. वर्मा, वृन्दावनलाल - विराटा की पद्मिनी, पृ.27

95. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.207

96. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, परिचय पृ.13

97. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.207,208

98. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, परिचय पृ.3

99. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.205

100. वर्मा, वृन्दावनलाल - देवगढ़ की मुस्कान, पृ.69

101. वर्मा, वृन्दावनलाल - गढ़कुंडार, पृ.127

102. वर्मा, वृन्दावनलाल - माधवजी सिंधिया, परिचय पृ.185

103. वर्मा, वृन्दावनलाल - विराटा की पद्मिनी, पृ.253

104. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.178

105. वर्मा, वृन्दावनलाल - विराटा की पद्मिनी, पृ.60

106. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.494

107. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, पृ.142

108. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.321

109. वर्मा, वृन्दावनलाल - देवगढ़ की मुस्कान, पृ.242

110. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.4

111. वर्मा, वृन्दावनलाल - अहिल्याबाई, पृ.312-313

112. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, पृ.219

113. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.295

114. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.492

115. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.92

116. वर्मा, वृन्दावनलाल - टूटे काँटे, पृ.219-220

117. वर्मा, वृन्दावनलाल - कुंडलीचक्र, पृ.225

118. वर्मा, वृन्दावनलाल - आहत, पृ.238

119. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.85

120. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.410-411

121. वर्मा, वृन्दावनलाल - कुंडलीचक्र, पृ.202

122. वर्मा, वृन्दावनलाल - अहिल्याबाई, पृ.74

123. वर्मा, वृन्दावनलाल - संगम, पृ.87

124. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.101

125. वर्मा, वृन्दावनलाल - संगम, पृ.65

126. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.299

127. वर्मा, वृन्दावनलाल - आहात, पृ.72

128. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.321

129. वर्मा, वृन्दावनलाल - देवगढ़ की मुस्कान, पृ.67

130. वर्मा, वृन्दावनलाल - सोना, पृ.103

131. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.5

132. वर्मा, वृन्दावनलाल - रामगढ़ की रानी, पृ.108

133. वर्मा, वृन्दावनलाल - भुवन विक्रम, पृ.43, 44

134. वर्मा, वृन्दावनलाल - प्रेम की भेंट, पृ.185

135. वर्मा, वृन्दावनलाल - देवगढ़ की मुस्कान, पृ.18

136. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, पृ.83

137. वर्मा, वृन्दावनलाल - गढ़ कुंडार, पृ.466

138. वर्मा, वृन्दावनलाल - मुसाहिबजू, पृ.14

139. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.33

140. वर्मा, वृन्दावनलाल - भुवन विक्रम, पृ.72

141. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.12-113

142. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.15

143. वर्मा, वृन्दावनलाल - अमरबेल, पृ.25

144. वर्मा, वृन्दावनलाल - सोना, पृ.28

145. वर्मा, वृन्दावनलाल - आहात, पृ.127

146. वर्मा, वृन्दावनलाल - अचल मेरा कोई, पृ.177-178

147. वर्मा, वृन्दावनलाल - भुवन विक्रम, पृ.19

148. वर्मा, वृन्दावनलाल - भुवन विक्रम, पृ.44

149. वर्मा, वृन्दावनलाल - भुवन विक्रम, पृ.36

150. वर्मा, वृन्दावनलाल - भुवन विक्रम, पृ.41

151. वर्मा, वृन्दावनलाल - देवगढ़ की मुस्कान, पृ.29

152. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.177

153. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.125

154. वर्मा, वृन्दावनलाल - अहिल्याबाई, पृ.36

155. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, पृ.142

156. वर्मा, वृन्दावनलाल - अमरबेल, पृ.18

157. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.424

158. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.28

159. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.10-11

160. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.415

161. वर्मा, वृन्दावनलाल - अमरबेल, पृ.160

162. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.50

163. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.18

164. वर्मा, वृन्दावनलाल - भुवन विक्रम, पृ.218

165. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.417

166. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.336, 337

167. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.283

168. वर्मा, वृन्दावनलाल - विराटाकी पद्मिनी, पृ.260

169. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.282

170. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.16, 17

171. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, पृ.193

172. वर्मा, वृन्दावनलाल - विराटा की पद्मिनी, पृ.99, 100

173. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, पृ.7

174. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.50

175. वर्मा, वृन्दावनलाल - रानी लक्ष्मीबाई, पृ.99, 100

176. वर्मा, वृन्दावनलाल - मृगनयनी, पृ.4, 5

177. वर्मा, वृन्दावनलाल - रायगढ़ की रानी, पृ.108

178. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, पृ.84

179. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, पृ.3

180. वर्मा, वृन्दावनलाल - कचनार, पृ.9

181. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी रानी, पृ.97

182. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.390

183. वर्मा, वृन्दावनलाल - कुण्डलीचक्र, पृ.99

184. वर्मा, वृन्दावनलाल - विराटा की पद्मिनी, पृ.100

185. वर्मा, वृन्दावनलाल - विराटा की पद्मिनी, पृ.253

186. वर्मा, वृन्दावनलाल - आहत, पृ.58

187. वर्मा, वृन्दावनलाल - संगम, पृ.89, 90

188. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.18

189. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.121, 122

190. वर्मा, वृन्दावनलाल - अपनी कहानी, पृ.107

191. शर्मा, रामचन्द्र - मानक हिन्दी कोश, पृ.30

192. सिन्हा, डॉ. अजित कुमार - समाज दर्शन की रूपरेखा, पृ.99

193. बाजपेयी, नन्द दुलारे - आधुनिक साहित्य, पृ.86

194. द्विवेदी, डॉ. हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य, पृ.257

195. वर्मा, वृन्दावनलाल - रामगढ़ की रानी, पृ.23

196. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.188

197. वर्मा, वृन्दावनलाल - मुसाहिबजू, पृ.35

198. वर्मा, वृन्दावनलाल - अचल मेरा कोई, पृ.2

199. वर्मा, वृन्दावनलाल - गढ़ कुंडार, पृ.476, 477

200. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की गनी, पृ.246

201. वर्मा, वृन्दावनलाल - माधवजी सिंधिया, पृ.403

202. वर्मा, वृन्दावनलाल - प्रत्यागत, पृ.65

203. वर्मा, वृन्दावनलाल - प्रत्यागत, पृ.100

204. वर्मा, वृन्दावनलाल - अमरबेल, पृ.61

205. वर्मा, वृन्दावनलाल - अमरबेल, पृ.61

206. वर्मा, वृन्दावनलाल - अचल मेरा कोई, पृ.222

207. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.270

208. वर्मा, वृन्दावनलाल - झाँसी की रानी, पृ.105

209. वर्मा, वृन्दावनलाल - महारानी दुर्गावती, पृ.286

210. वर्मा, वृन्दावनलाल - विराटा की पद्मिनी, पृ.232

211. वर्मा, वृन्दावनलाल - माधवजी सिंधिया, पृ.486, 487